MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 3

वर्ष 4, अंक 16, अक्तूबर-2018
आश्विन, वि. सं. 2075, ₹ 50

# मंगल विमर्श

त्रैमासिक

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

## अंदर के पृष्ठों पर

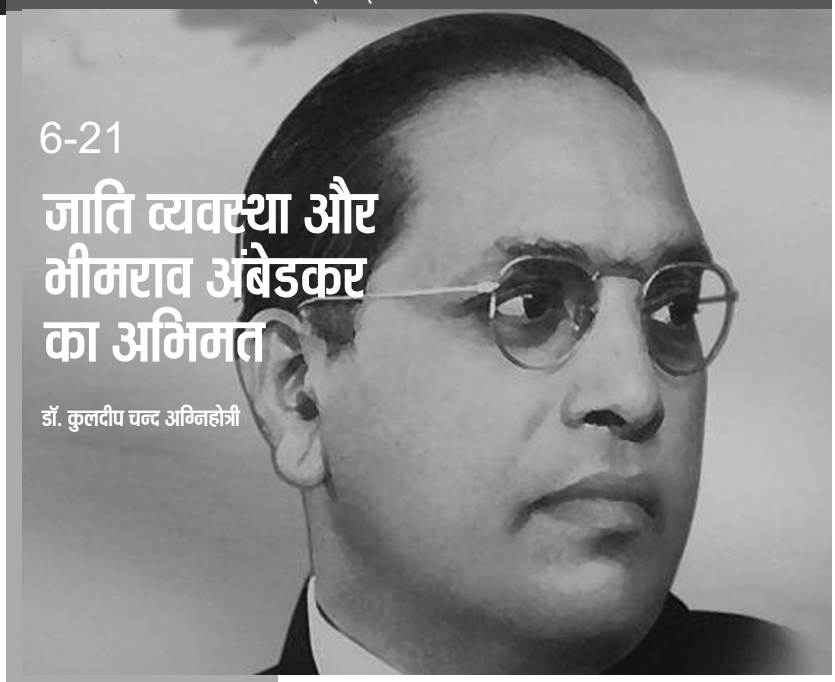

6-21
**जाति व्यवस्था और भीमराव अंबेडकर का अभिमत**
डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

22-27
**जनशक्ति विकास में निहित है भारत की प्रगति**
ओम प्रकाश दुबे

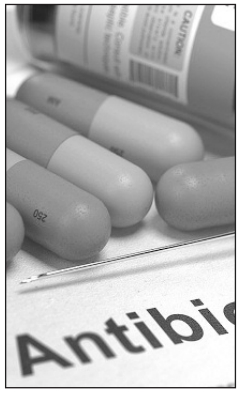

28-51
**वेद एवं विज्ञान : संगच्छध्वं! संवद्ध्वं !!**
आनन्द आदीश

52-55
**एंटीबायोटिक औषधियाँ : उत्थान, पतन और भविष्य**
डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल

56-59
**जैव विविधता का उपयोग ही है उसका संरक्षण**
डॉ. ज्योत्स्ना

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संपादक
सुनील पांडेय

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

प्रकाशक एवं मुद्रक आदर्श गुप्ता द्वारा मंगल सृष्टि, सी-84, अहिंसा विहार, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 के लिए प्रकाशित एवं एक्सेल प्रिंट, सी-36, एफ एफ कॉम्प्लेक्स, झंडेवाला, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

RNI
DELHIN/2015/59919
ISSN
2394-9929
ISBN
978-81-935561-4-6

**फोन नं.**
+91-9811166215
+91-11-27565018
+91-11-42633153
**ई-मेल**
mangalvimarsh@gmail.com
**वेब साइट**
www.mangalvimarsh.in

मंगल विमर्श पत्रिका में व्यक्त विचारों के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं। संपादक, मुद्रक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

सभी विवादों का न्याय क्षेत्र केवल दिल्ली होगा।

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 4

25 दिसंबर, 1924 - 16 अगस्त, 2018

शत्-शत् नमन

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 5



# अथ

आज के दौर में अपना सारा जीवन राष्ट्र को अर्पित करने वाले महानुभाव विरले होते हैं। ऐसे विलक्षण व्यक्तियों की रगों में देशानुराग इस प्रकार हिलोरें मारता है कि उनके परिवार, प्रियजन व अन्य नाते पीछे छूट जाते हैं। उनके मानस से अहं, स्वार्थ, आत्मलिप्तता व महत्त्वाकांक्षाएँ तिरोहित हो जाती हैं। रह जाता है तो केवल राष्ट्रहित-वही जीवन, वही सर्वस्व; वही मार्ग, वही मंजिल। वे ऐसे ऊँचे मानक गढ़ कर जाते हैं कि समय के शिलालेखों पर उनका नाम अमिट हो जाता है। अटल बिहारी वाजपेयी ऐसे ही महाप्राण नेता थे, जिन्हें जनकर भारत माँ धन्य हो गई और देशवासी भाव-विभोर!

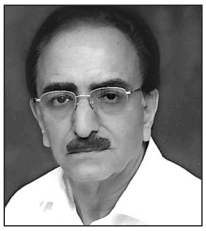

**ओमीश परुथी**
एसोसिएट प्रोफेसर (से.नि.)
**प्रधान संपादक**

अटल जी ने अपने जीवन की शुरुआत राष्ट्रवादी चिंतन के प्रेरक व पोषक 'राष्ट्रीय स्वयंसवेक संघ' के प्रचारक बन कर की। बाद में राजनीति, प्रशासन, आणविक शक्ति-संवर्धन, पत्र-संपादन अथवा काव्य-सृजन, जिस किसी क्षेत्र में वे रहे राष्ट्रहित की कसौटी को ही परम माना। 27 मई, 1996 को संसद में सिंहनाद करते हुए उन्होंने जो कहा, वह इसका साक्षी है–

'सरकारें आएँगी, जाएँगी। पार्टियाँ बनेंगी, बिगडेंगी। मगर यह देश रहना चाहिए। इस देश का लोकतंत्र अमर रहना चाहिए।'

एक सामान्य राजनीतिज्ञ ऐसा नहीं सोच सकता। अटल जी जैसा दूरद्रष्टा, युगपुरुष एवं स्टेट्समैन ही ऐसा उम्दा सोच सकता है। वह तात्कालिकता व दलगतता से ऊपर उठकर राष्ट्र के भविष्य पर दृष्टि लगाए रखता है। भावी पीढ़ियों के उत्थान को लक्षित करता है। सामान्य जन की प्रतिष्ठा व प्रगति के लिए प्रतिबद्ध होता है। अटल जी ने राजनीति को नैतिकता की धवल, पावन शिला पर अवस्थित कर एक अनुकरणीय मानक प्रस्तुत किया।

सृजनात्मकता व सामंजस्य की कला ने गोस्वामी तुलसीदास को लोकनायक बना दिया। ऐसे ही वक्तृत्व कला व सामंजस्य की अपूर्व क्षमता के बल पर अटल जी जननायक बन गए। वे विरोधी तत्त्वों के बीच सामंजस्य बिठाने में बड़े माहिर थे। उन्होंने स्वदेशी चिंतन व वैश्विक उदारीकरण के बीच तालमेल बिठाया। बहुरंगी दलों की साँझी सरकार के संचालन में इसी प्रतिभा के बल पर सफल रहे। पड़ोसी देशों के साथ अच्छे संबंधों के विकास के साथ-साथ अमेरिका, फ्रांस, रूस, चीन जैसी महाशक्तियों के साथ संबंध सुधारने में भी कामयाब रहे। उनके निधन पर इन देशों के प्रतिनिधियों ने जो श्रद्धांजलियाँ दीं, उससे यह तथ्य उजागर होता।

उन्होंने कवि हृदय पाया था। काव्य-सृजन की रागात्मकता ने उन्हें अपने कर्म एवं मर्म में कभी कट्टर नहीं होने दिया। उनके व्यक्तित्व में सौहार्द एवं स्वीकार्यता की तरलता एवं मानवतावाद की गरिमा भी काव्य सान्निध्य से आई। विरोधियों के प्रति दुर्भावना उन्हें कभी छू तक नहीं गई। वे वास्तव में अजातशत्रु थे। उनके जाने से राष्ट्रवादी चिंतन की अपूरणीय क्षति हुई है।

'मंगल विमर्श परिवार' की ओर से
उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि!

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 6

भारतीय समाज में जाति प्रथा कब, कैसे और क्यों प्रारंभ हुई इस पर बहुत मतभेद हैं। डॉ. भीम राव अंबेडकर ने इस जाति प्रथा के खिलाफ एक लंबी लड़ाई लड़ी और उन्होंने जाति प्रथा के उन्मूलन के लिए तब जो उपाय सुझाये थे उनमें से अनेक की उन्होंने भारतीय संविधान में व्यवस्था की। इसके बावजूद जाति व्यवस्था ने आज राजनीति को जिस प्रकार अपनी चपेट में ले लिया है वह गंभीर चिंता का विषय है। स्थिति यह हो गई है कि अब राजनीतिक स्वार्थों के चलते, बाबा साहब अंबेडकर के जातिविहीन हिंदू समाज के स्वप्न को तोड़ने के षड्यंत्र रचे जा रहे हैं। बाबा साहब के स्वप्न को पूरा करने के लिए आज उनके चिंतन पर, बिना किसी पूर्वाग्रह के विचार किए जाने की आवश्यकता बता रहे हैं हिमाचल प्रदेश केंद्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, धर्मशाला के कुलपति डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री --

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 7



डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

# जाति व्यवस्था और भीमराव अंबेडकर का अभिमत

डॉ. भीमराव अंबेडकर हिंदू समाज की जातिप्रथा को इसकी सबसे बड़ी आंतरिक कमजोरी मानते थे। जाति प्रथा को लेकर अंबेडकर की लड़ाई के दो मोर्चे थे। पहला मोर्चा था गहराई से अध्ययन करके जाति व्यवस्था या जाति उत्पत्ति के मूल की तलाश। दूसरा मोर्चा था जाति व्यवस्था को समाप्त करने के लिए आंदोलनात्मक गतिविधियों का संचालन। वे इन दोनों मोर्चों पर एक साथ खड़े दिखाई देते हैं ।

भारत में जातिप्रथा को लेकर उनके दो आलेख सर्वाधिक चर्चित हैं। पहला आलेख, 'भारत में जातिप्रथा-संरचना उत्पत्ति और विकास' उन्होंने 9 मई, 1916 को अमेरिका के कोलंबिया विश्वविद्यालय में नृविज्ञान पर आयोजित एक गोष्ठी में पढ़ा था। जाति प्रथा उन्मूलन के नाम से दूसरा आलेख 1936 में 'जात-पात तोड़क मंडल' के लाहौर अधिवेशन में भाषण देने के लिए लिखा गया था। किंहीं कारणों से यह अधिवेशन नहीं हो सका। इसी भाषण को अंबेडकर ने 'एनिहिलेशन आफ कास्ट' के नाम से पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया। हिंदी में यह पुस्तिका जाति-प्रथा उन्मूलन के नाम से प्रकाशित हुई। मधु लिमये का मानना है कि उनके इस आलेख की तुलना कार्ल मार्क्स और एंजेल्स के 'कम्यूनिस्ट मैनीफेस्टो' की जा सकती है ।[1] अंबेडकर के इन दो आलेखों में लगभग बीस साल का अंतराल है। कोलंबिया विश्वविद्यालय की विचार गोष्ठी में पढ़ा गया उनका आलेख मूलतः शोधपरक है। तथ्यों की व्याख्या। लेकिन 1936 में लाहौर अधिवेशन हेतु लिखे गए आलेख से पहले उन्होंने अमेरिका से आने के बाद की लंबी यात्रा तय कर ली थी और अनुभव किया था कि अछूत जाति का व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करने के बाद, व्यवसाय पर आधारित वर्ण विभाजन, के तथाकथित सिद्धांत

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 8

के अनुसार ब्राह्मण भी हो जाए , तब भी वह व्यवहार में जन्म की अछूत जाति का ही रहेगा। इसलिए 1936 का आलेख किसी न किसी रूप में अनुभूतिजन्य भी है। इन बीस वर्षों में वे जाति उन्मूलन से हिंदू समाज की एकात्मता के रास्ते तलाशते रहे। इन रास्तों की तलाश में ही चौबदार तालाब के पानी के आंदोलन और कालाराम मंदिर में प्रवेश के आंदोलन के कंटकाकीर्ण रास्तों से गुजरे और उनके पैर लहूलुहान हुए। वे बहिष्कृत वर्गों का प्रतिनिधित्व करने के लिए 1931 में लंदन में हुई गोलमेज़ कांफ्रेंस में भाग ले चुके थे। महात्मा गांधी से उनका विरोध जगजाहिर हो चुका था। उसके बाद पूना समझौता भी हो चुका था। अतः1936

**भारत में जातिप्रथा को लेकर डॉ. अंबेडकर के दो आलेख सर्वाधिक चर्चित हैं। पहला आलेख, 'भारत में जातिप्रथा-संरचना उत्पत्ति और विकास' उन्होंने 9 मई, 1916 को कोलंबिया विश्वविद्यालय में एक गोष्ठी में पढ़ा था। जाति प्रथा उन्मूलन के नाम से दूसरा आलेख 1936 में 'जात-पात तोड़क मंडल' के लाहौर अधिवेशन में भाषण देने के लिए लिखा गया था। इसी भाषण को अंबेडकर ने 'एनिहिलेशन आफ कास्ट' के नाम से पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया।**

का उनका जाति प्रथा उन्मूलन आलेख इन्हीं बीहड़ों की यात्रा से प्राप्त अनुभव भी समेटे हुए है। 21 मार्च, 1920 को बहिष्कृत वर्ग के पहले सम्मेलन को संबोधित करते हुए कहा– ''हिंदू धर्म, जिससे हम सभी ताल्लुक रखते हैं, समाज को दो सिद्धांतों के आधार पर दो वर्गों में बाँटता है। पहला सिद्धांत है क्षमता और दूसरा सिद्धांत है शुद्धता। ये दोनों ही जन्म पर आधारित है। इस तरह हिंदुओं का तीन विभिन्न उपवर्गों में विभाजन किया जा सकता है।''[2]

1. जन्म से ही श्रेष्ठ और शुद्ध लोगों को ब्राह्मण वर्ग में रखा गया है ।
2. ब्राह्मणों से कमतर श्रेष्ठ और कमतर शुद्ध लोगों को गैर ब्राह्मण कहा गया ।
3. जन्म से ही अशुद्ध और निचले माने गए लोगों को दलित वर्ग कहा गया ।

इसके चार साल बाद 24 मई,1924 को दलित समाज के लोगों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा– ''तमाम इंसानों में एक ही आत्मा वास करती है, हिंदू दर्शन का यह मूल सिद्धांत है। अगर हमारा सामाजिक संगठन वास्तव में इस आदर्श विचार का प्रतिबिंब होता, तो हिंदुओं ने निश्चित रूप से सभी नागरिकों के साथ समान आदर के साथ व्यवहार किया होता। बहरहाल ऐसा नहीं हुआ है। हिंदू धर्म का व्यावहारिक रूप बुरी तरह भ्रष्ट हो गया है । विचारों का कर्म के साथ मिलन कहाँ है? यह सच्चाई तो और भी भयंकर है कि जिन लोगों का हिंदू धर्म में विश्वास नहीं है, उनके साथ तो वे बराबरी के साथ पेश आते हैं, लेकिन अछूतों के साथ नहीं। उनके लिए ईसाई न तो अछूत हैं और न ही अशुद्ध। हिंदू उनके स्पर्श से न तो भयभीत होते हैं और न ही वे उनके तहत काम करने से डरते हैं। एक नजरिया है कि मुसलमानों को, एक तरह से निचली जाति के हिंदुओं की तुलना में ज्यादा अछूत और अशुद्ध समझा जा सकता है क्योंकि वे गोमांस खाते हैं। फिर भी मुसलमानों और ईसाइयों को हिंदू अपने बराबर समझते हैं, लेकिन हमें नहीं। हम उसी वैदिक दर्शन को मानते और पूजते हैं। लेकिन फिर भी वे हमसे घृणा करते हैं । वे हमसे जानवरों से भी घटिया व्यवहार करते हैं।''[3]

एक तरफ अंबेडकर जाति की उत्पत्ति की गुत्थियाँ सुलझाने के लिए पुस्तकालयों की धूल फाँक रहे थे और दूसरी ओर दलितों के अधिकारों के लिए जमीनी संघर्ष करते हुए खून-पसीना एक भी कर रहे थे। उनका स्वर्णों से एक ही प्रश्न था, जब सभी हिंदू हैं तो हिंदुओं

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 9



के ही एक वर्ग को मंदिर प्रवेश का अधिकार क्यों नहीं है। वे मंदिर प्रवेश के लिए सवर्णों से दया की भीख नहीं माँग रहे थे, बल्कि इसे वे दलितों का अधिकार मानकर, अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे थे। 13 नवंबर, 1927 को दलितों के मंदिर प्रवेश संबंधी बैठक में बोलते हुए उन्होंने कहा –"यह ठीक है कि मंदिर दलितों के वित्तीय सहयोग से तो बनाए गए नहीं होंगे। लेकिन इसके बावजूद ये मंदिर सभी हिंदुओं के लिए हैं किसी एक जाति के नहीं। इसलिए हिंदुत्व के हित के लिए इन्हें अस्पृश्यों के लिए भी खोला जाना चाहिए। कुछ मामलों में कुछ मंदिर किसी के व्यक्तिगत हो सकते हैं लेकिन फिर भी पूजा के लिए ये मंदिर समस्त हिंदुओं के हैं। इसलिए अस्पृश्यों को भी यहाँ पूजा का अधिकार है। हिंदुत्व जितना सवर्णों का है, उतना ही अस्पृश्यों का भी है ।''[4] इसलिए कहा जा सकता है कि अंबेडकर ने जाति प्रथा का अध्ययन केवल शास्त्रों और किताबों में नहीं किया था, बल्कि उन्होंने इसका अध्ययन जीवन की प्रयोगशाला में किया था। यही कारण था कि उनके निष्कर्ष कई लोगों को चुभते थे।

1931 तक आते-आते अंबेडकर को लेकर कांग्रेस ने एक प्रकार से युद्ध ही छेड़ दिया था। महात्मा गांधी का विरोध अंबेडकर के लिए भारी पड़ रहा था। अंबेडकर इस मत के होते जा रहे थे कि ''कांग्रेस मुसलमानों का तो तुष्टीकरण कर रही है, लेकिन अछूतों और दलितों के उचित अधिकारों की बात भी नहीं करना चाहती। ऐसे वातावरण में उन्होंने कहा, आज हिंदुओं के शत्रु के रूप में मेरी निंदा की जाती है। ...लेकिन जब मेरी कार्यवाहियों की तटस्थ समीक्षा की जाएगी तो हिंदुओं की आनेवाली पीढ़ियाँ देश के प्रति मेरी सेवा की प्रशंसा करेंगीं।''[5]

इस पृष्ठभूमि में,1916 और 1936 के इन दो आलेखों में काफी गहराई से अध्ययन करने के पश्चात् अंबेडकर ने जाति प्रथा के उद्गम, उसके दुष्प्रभावों और उसके उन्मूलन को लेकर अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किए। लेकिन भारत में जाति व्यवस्था के उद्गम को लेकर पश्चिमी विद्वानों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से वे सहमत नहीं थे। भारत के संपर्क में आने के बाद पश्चिम के विचारकों ने जातिप्रथा को देखकर भारतीय समाज की मौलिक प्रकृति पर अनेक ग्रंथ लिखे और टिप्पणियाँ कीं। उनके अनुसार जाति-प्रथा के कारण भारतीय समाज एकरस और समरस नहीं है। इस देश में अनेक जातियाँ हैं, आर्य और द्रविड हैं, काले और गोरे रंग की नस्लें हैं। इसलिए इस देश की संस्कृति मिश्रित संस्कृति है और यह देश अलग-अलग समाजों का एक अप्राकृतिक मिश्रण है। अंबेडकर ने उन निष्कर्षों को

**1931 तक आते-आते अंबेडकर को लेकर कांग्रेस ने एक प्रकार से युद्ध ही छेड़ दिया था। महात्मा गांधी का विरोध अंबेडकर के लिए भारी पड़ रहा था। अंबेडकर इस मत के होते जा रहे थे कि कांग्रेस मुसलमानों का तो तुष्टीकरण कर रही है, लेकिन अछूतों और दलितों के उचित अधिकारों की बात भी नहीं करना चाहती। तब उन्होंने कहा, आज हिंदुओं के शत्रु के रूप में मेरी निंदा की जाती है। ... लेकिन जब मेरी कार्यवाहियों की तटस्थ समीक्षा की जाएगी तो हिंदुओं की आनेवाली पीढ़ियाँ देश के प्रति मेरी सेवा की प्रशंसा करेंगीं ।**

नकारते हुए, भारतीय अथवा हिंदू समाज में जाति की उत्पत्ति को लेकर पश्चिमी आक्षेपों का उत्तर भी दिया। इस संबंध में उन्होंने नेसफील्ड, सर एच रिजले और फ्रांस के सेनार का विशेष उल्लेख किया ।

अंबेडकर ने जाति व्यवस्था को लेकर यूरोपीय विद्वानों को उद्धृत किया। पश्चिम के प्रसिद्ध नृजाति वैज्ञानिकों के अनुसार भारतीय समाज में आर्यों, द्रविडों, मंगोलों और शकों का सम्मिश्रण है। ये जातियाँ देश-देश से शताब्दियों पूर्व भारत पहुँची और अपने मूल देश की

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 10

सांस्कृतिक विरासत के साथ यहाँ बस गईं, तब इनकी स्थिति कबायली थी। ये अपने पूर्ववर्तियों को धकेलकर इस देश के अंग बन गए। इनके परस्पर सतत् संपर्कों से समन्वित संस्कृति का सूत्रपात हुआ। [6] इस मत का उत्तर अंबेडकर ने दिया । उन्होंने लिखा – "भारतीय समाज के विषय में यह बात कहना असंगत है कि वह विभिन्न जातियों का संकलन है। पूरे भारत में भ्रमण करने पर सभी ओर यह साक्ष्य मिलेगा कि देश के लोगों में शारीरिक गठन और रंग रूप की दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय समाज विजातीय है, लेकिन यह सांस्कृतिक रूप से अत्यंत गहराई से गुंथा हुआ है। इसी आधार पर मेरा कहना है कि इस प्रायद्वीप को छोड़कर संसार का कोई ऐसा देश नहीं है, जिसमें इतनी सांस्कृतिक समरसता हो। हम केवल भौगोलिक दृष्टि से ही सुगठित नहीं हैं, बल्कि हमारी सुनिश्चित सांस्कृतिक एकता भी अविच्छिन्न और अटूट हैं, जो पूरे देश में चारों दिशाओं में व्याप्त है।''[7]

**"भारतीय समाज के विषय में यह बात कहना असंगत है कि वह विभिन्न जातियों का संकलन है। पूरे भारत में भ्रमण करने पर सभी ओर यह साक्ष्य मिलेगा कि देश के लोगों में शारीरिक गठन और रंग रूप की दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय समाज विजातीय है, लेकिन यह सांस्कृतिक रूप से अत्यंत गहराई से गुंथा हुआ है। इसी आधार पर मेरा कहना है कि इस प्रायद्वीप को छोड़कर संसार का कोई ऐसा देश नहीं है, जिसमें इतनी सांस्कृतिक समरसता हो। हम केवल भौगोलिक दृष्टि से ही सुगठित नहीं हैं, बल्कि हमारी सुनिश्चित सांस्कृतिक एकता भी अविच्छिन्न और अटूट हैं, जो पूरे देश में चारों दिशाओं में व्याप्त है।" –डॉ. अंबेडकर**

अंबेडकर के अनुसार सांस्कृतिक समरसता भारतीय समाज का एकपक्ष है और शायद इस समरसता के कारण ही जाति-प्रथा इतनी भयानक हो गई है। जाति-प्रथा दरअसल समरस समाज का नकारात्मक पक्ष है और इसी नकारात्मक पक्ष के कारण आसेतु कन्याकुमारी से लेकर हिमाचल तक सांस्कृतिक रूप से एकरूप समाज विदेशी आक्रमणकारियों का सामना नहीं कर सका। वे लिखते हैं– ''इसी सांस्कृतिक एकरूपता के कारण जाति-प्रथा इतनी विकराल समस्या बन गई है कि उसकी व्याख्या करना कठिन कार्य है। यदि हमारा समाज केवल विजातीय या सम्मिश्रण भी होता तब भी कोई बात थी, किंतु यहाँ तो सजातीय समाज में भी जातिप्रथा घुसी हुई है। हमें इसकी उत्पत्ति की व्याख्या के साथ-साथ इसके संक्रमण की भी व्याख्या करनी होगी।''[8] प्रसिद्ध समाजवादी विचारक मधुलिमये इस बात कि ओर ध्यान दिलाते हैं कि ''जब अंबेडकर कोलंबिया विश्वविद्यालय में पश्चिम के स्थापित नृविज्ञानियों के निष्कर्षों को चुनौती दे रहे थे तब उनकी आयु मात्र 25 साल की थी।''[9]

विदेशी विद्वान भारत की जाति प्रथा को (क) व्यवसाय (ख) विभिन्न कबायली संगठनों का प्रचलन (ग) नई धारणाओं का जन्म (घ) संक्रमण जातियाँ (ड) आव्रजन के कारणों में सूत्रबद्ध करते हैं । लेकिन अंबेडकर पूछते हैं– "क्या ये मान्यताएँ अन्य समाजों में मौजूद नहीं हैं और भारत में ही उनका विशिष्ट रूप विद्यमान है? यदि ये केवल भारत की विशेषताएँ नहीं हैं और पूरे विश्व में एक समान मौजूद हैं तो उन्होंने भूमंडल के किसी अन्य भाग में जातियाँ क्यों नहीं गढ़ लीं।''[10] दुर्भाग्य से बहुत से पश्चिमी विद्वान जड़ तक जाने की बजाए शाखाओं और पत्तियों को देखकर ही इस जाति प्रथा की उत्पत्ति का अनुमान लगाते रहे। अंबेडकर ने एक बार फिर उन यूरोपीय विद्वानों की समझ पर चोट की जो रंगभेद को जातिप्रथा का मूल मानते हैं। अंबेडकर ने स्पष्ट किया– ''जाति प्रथा का

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 11



अध्ययन करने वाले यूरोपीयन विद्धानों ने व्यर्थ ही इस बात पर जोर दिया है कि जाति प्रथा रंग के आधार पर बनाई गई। क्योंकि यूरोपीय स्वयं रंगभेद के प्रति पूर्वाग्रही हैं, अतः उन्होंने जाति-समस्या का मुख्य तत्त्व रंग भेद ही माना है, परंतु यह सत्य नहीं है। ... यूरोपीय विद्वान अपनी व्याख्या का विवरण देते रहें और इस बात पर सिर पटकते रहें कि जाति-प्रथा के उद्भव का यही सिद्धांत है।''[11] अंबेडकर ने इस बात को तो स्वीकार कि इस देश में व्यावसायिक और धार्मिक आदि जातियाँ हैं, परंतु किसी भी हालत में यह सिद्धांत जातियों के मूल से मेल नहीं खाता। उनके अनुसार ''असली काम तो यह पता लगाना है कि व्यावसायिक वर्ग जातियाँ क्यों और कैसे बनीं? अंबेडकर ने तंज कसा कि यूरोपीय नृविज्ञानियों ने इस प्रश्न को कभी छुआ ही नहीं। अंतिम परिणाम यह है कि उन्होंने जाति-समस्या को बहुत आसान करके समझा, जैसे वे चुटकी बजाते ही बन गई हों। इसके विपरीत जैसे मैंने कहा है यह मान्य नहीं है, क्योंकि इस प्रथा में बहुत जटिलताएँ हैं। यह सत्य है कि जाति-प्रथा की जड़ें आस्थाएँ हैं, परंतु आस्थाओं के जाति संरचना योगदान के पहले ही ये मौजूद थीं और दृढ़ हो चुकी थीं।''[12]

पश्चिमी विचारक ऐसा करें तो समझा जा सकता है क्योंकि पश्चिमी विचारकों के लिए भारतीय समाज की प्रकृति एवं स्वभाव को समझ पाना इतना सहज नहीं है। परंतु जब भारतीय विद्वान भी उन्हीं के निष्कर्षों को लेकर नाचने लगें तो आश्चर्य तो होगा ही। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि 1850 के आसपास से भारत में आरोपित ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली ने जिन भारतीय विद्वानों को जन्म दिया, उन्होंने मानसिक रूप से पश्चिमी विचारकों के निष्कर्षों को बिना तर्क किए स्वीकार कर लिया। लेकिन बाबा साहब एक मौलिक चिंतक थे। उन्होंने पश्चिमी विचारकों की जाति-प्रथा को लेकर बनायी गई अवधारणाओं को अक्षरशः स्वीकार करने के बजाए, अपने तर्कों से आधारहीन सिद्ध किया।

डॉ. अंबेडकर भारतीय समाज को आधारभूत मान कर इस समाज में जाति की उत्पत्ति के पद चिह्नों की तलाश कर रहे थे। जबतक जाति प्रथा की उत्पत्ति के मूल तक नहीं पहुँचा जाएगा तब तक उसे जड़ से हिलाया कैसे जा सकता है? बीमारी को समझे बिना उसका निराकरण संभव नहीं है। लेकिन जाति प्रथा के मूल को तलाशने से पहले अंबेडकर ने एक स्पष्टीकरण दिया। ''कुछ लोग यह मान रहे थे कि मनु ने जाति व्यवस्था लागू की है।'' अंबेडकर ने लिखा–''मनु ने जाति के विधान का निर्माण नहीं किया और न ही वह

**''जाति प्रथा का अध्ययन करने वाले यूरोपीयन विद्धानों ने व्यर्थ ही इस बात पर जोर दिया है कि जाति प्रथा रंग के आधार पर बनाई गई। क्योंकि यूरोपीय स्वयं रंगभेद के प्रति पूर्वाग्रही हैं, अतः उन्होंने जाति-समस्या का मुख्य तत्त्व रंग भेद ही माना है, परंतु यह सत्य नहीं है। ... यूरोपीय विद्वान अपनी व्याख्या का विवरण देते रहें और इस बात पर सिर पटकते रहें कि जाति-प्रथा के उद्भव का यही सिद्धांत है।''**

**– डॉ. अंबेडकर**

कर सकता था। जाति-प्रथा मनु से पूर्व ही विद्यमान थी। ...प्रचलित जातिप्रथा को ही उसने संहिता का रूप दिया। ...जाति प्रथा का विस्तार और दृढ़ता इतनी विराट है कि यह एक व्यक्ति या वर्ग की धूर्तता और बलबूते का काम नहीं हो सकता। तर्क में यह सिद्धांत है कि ब्राह्मणों ने जाति संरचना की ...लेकिन गैर ब्राह्मण अन्य जन समुदायों पर जाति प्रथा थोपना उनके बूते से बाहर की बात थी।''[13]

डॉ.अंबेडकर ने लिखा ''यह बात सतही है कि व्यक्ति मिलकर समाज बनाते हैं। समाज सर्वथा वर्गों से

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 12

मिलकर बनता है, इसमें वर्ग संघर्ष के सिद्धांत पर बल देना अतिशयोक्ति हो सकती है, परंतु यह सच है कि समाज में कुछ निश्चित वर्ग होते हैं। आधार भिन्न हो सकते हैं। वे वर्ग आर्थिक, आध्यात्मिक या सामाजिक हो सकते हैं। लेकिन समाज का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी वर्ग से संबद्ध होता है। यह एक शाश्वत सत्य है और आरंभिक हिंदू समाज भी इसका अपवाद नहीं रहा होगा। जहाँ तक हम जानते हैं, वह अपवाद नहीं था। यदि हम इस सामान्य नियम को ध्यान में रखें तो हम पाते हैं कि जात-पात की उत्पत्ति के अध्ययन में यह बहुत उपयोगी तत्त्व साबित हो सकता है क्योंकि हम यह निश्चित करना चाहते हैं कि वह कौन-सा वर्ग था

**''मनु ने जाति के विधान का निर्माण नहीं किया और न ही वह कर सकता था। जाति-प्रथा मनु से पूर्व ही विद्यमान थी। ...प्रचलित जातिप्रथा को ही उसने संहिता का रूप दिया। ...जाति प्रथा का विस्तार और दृढ़ता इतनी विराट् है कि यह एक व्यक्ति या वर्ग की धूर्तता और बलबूते का काम नहीं हो सकता। तर्क में यह सिद्धांत है कि ब्राह्मणों ने जाति संरचना की ... लेकिन गैर ब्राह्मण अन्य जन समुदायों पर जाति प्रथा थोपना उनके बूते से बाहर की बात थी।'' –डॉ. अंबेडकर**

जिसने सबसे पहले अपनी जाति की संरचना की। इसलिए वर्ग और जाति एक दूसरे के दो रूप हैं। फर्क सिर्फ यह है कि जाति अपने को सजातीय परिधि में रखने वाला वर्ग है। जाति-प्रथा के मूल का अध्ययन हमारे इन प्रश्नों का उत्तर दे सकता है कि वह कौन-सा वर्ग है जिसने इस परिधि का सूत्रपात किया, जो इसका चक्रव्यूह है? यह प्रश्न बहुत कोतूहलजनक है। परंतु यह बहुत प्रासंगिक है और इसका उत्तर उस रहस्य पर से पर्दा हटाएगा कि पूरे भारत में जातिप्रथा कैसे पनपी और दृढ़ होती गई। दुर्भाग्य से इस प्रश्न का सीधा उत्तर मेरे पास नहीं है। मैं इसका परोक्ष उत्तर ही दे सकता हूँ। मैंने अभी कहा है कि विचाराधीन रीति-रिवाज हिंदू समाज में प्रवाहित हैं। तथ्यों को यथार्थ बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि कथन को स्पष्ट किया जाए ताकि इसकी व्यापकता पर प्रकाश डाला जा सके। यह प्रथा अपनी पूरी दृढ़ता के साथ केवल एक जाति अर्थात् ब्राह्मणों में प्रचलित है जो हिंदू समाज की संरचना में सर्वोच्च स्थान पर हैं। गैर ब्राह्मण जातियों ने इसका केवल अनुसरण किया है। इसलिए वहाँ इसके पालन में न तो उनकी दृढता है और न संपूर्णता। यह महत्त्वपूर्ण तथ्य हमारे सामने महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत कर सकता है। यदि गैर ब्राह्मण जातियाँ इस प्रथा का अनुसरण करती हैं, जैसा कि आसानी देखा जा सकता है, तो यह प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती कि कौन-सा वर्ग जाति-व्यवस्था का जनक है। ब्राह्मणों ने क्या अपने लिए एक परिधि बनाई और जाति की संरचना कर ली? यह एक अलग प्रश्न है, जिस पर किसी अन्य अवसर पर विचार किया जाएगा। परंतु इस रीति-नीति पर कड़ाई से पालन और इस पुरोहित वर्ग द्वारा प्राचीन काल से इस प्रथा का कड़ाई से अमल, यह प्रमाणित करता है कि वही वर्ग इस अप्राकृतिक संस्था का जन्मदाता था। उसके अप्राकृतिक साधनों से इसकी नींव डाली और इसे जिंदा रखा।''[14] अंबेडकर मानते हैं कि प्रारंभिक अवस्था में वर्ण विभाजन, श्रमविभाजन के सिद्धांत पर ही आधारित था। एक वर्ण का व्यक्ति अपने कार्य के आधार पर दूसरे वर्ण में जा सकता था। इस प्रकार समाज में गतिशीलता विद्यमान थी। परंतु धीरे-धीरे जब एक वर्ग ने अपने इर्द-गिर्द परिधि निश्चित कर दी और व्यवहार भी सजातीय कर दिया तो जाति अपने नकारात्मक रूप में प्रकट हुई और इससे गतिशीलता प्रभावित हुई। जड़ता ने जन्म लिया। डॉ. अंबेडकर ने जोर देकर कहा- ''यह उचित ही रहेगा

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 13



कि शुरू में मैं यह बात याद दिलाऊँ कि अन्य समाजों के समान भारतीय समाज भी चार वर्णों में विभाजित था। ये हैं–

1. ब्राह्मण या पुरोहित वर्ग
2. क्षत्रिय या सैनिक वर्ग
3. वैश्य अथवा कृषक व व्यापारिक वर्ग
4. शूद्र अथवा शिल्पकार और श्रमिक वर्ग।

इस बात पर विशेष ध्यान देना होगा कि आरंभ में वर्ग विभाजन के अंतर्गत व्यक्ति दक्षता के आधार पर अपना वर्ण बदल सकता था और इसलिए वर्णों को व्यक्तियों के कार्य की परिवर्तनशीलता स्वीकार थी।''[15] अंबेडकर पहले ही प्रस्थापित कर चुके हैं कि ब्राह्मणों ने अपने लिए एक जाति का निर्माण कर लिया। तो भी अन्य वर्गों में यह व्यवस्था कैसे पनपी? अंबेडकर मानते हैं कि ''जातिप्रथा नकल का परिणाम थी। जब एक वर्ग ने स्वयं को सीमित कर लिया, तो दूसरे वर्गों ने भी ऐसा करना शुरू कर दिया।

हिंदू इतिहास में किसी समय पुरोहित वर्ग ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया और इस तरह स्वयं सीमित प्रथा से जातियों का सूत्रपात हुआ। दूसरे वर्ण भी समाज विभाजन के सिद्धांतानुसार अलग-अलग खेमों में बट गए । कुछ का संख्या बल अधिक था, कुछ का नगण्य। वैश्य और शूद्र वर्ण मौलिक रूप से वे तत्त्व हैं जिनकी जातियों की अनगनित शाखाएँ-प्रशाखाएँ कालांतर में उभरी हैं। क्योंकि सैनिक व्यवसाय के लोग असंख्य समुदायों में सरलता से विभाजित नहीं हो सकते, इसलिए यह वर्ण सैनिकों और शासकों के लिए सुरक्षित हो गया। समाज का यह उप-वर्गीकरण स्वभाविक है। किंतु उपर्युक्त विभाजन में अप्राकृतिक तत्त्व यह है कि इससे वर्णों में परिवर्तनशीलता के मार्ग अवरुद्ध को गए और वे संकुचित बनते चले गए, जिन्होंने जातियों का रूप ले लिया। प्रश्न यह उठता है कि क्या उन्हें अपने दायरे में रहने के लिए विवश किया गया और उन्होंने सजातीय विवाह का नियम अपना लिया या उन्होंने स्वेच्छा से ऐसा किया। मेरा कहना है कि इसका द्विपक्षीय उत्तर हैकुछ ने द्वार बंद कर लिए और कुछ ने दूसरों के द्वार अपने लिए बंद पाए। पहला पक्ष मनोवैज्ञानिक है और दूसरा चालाकी भरा, परंतु ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं और जाति-संरचना की संपूर्ण रीति-नीति में दोनों की व्याख्या जरूरी है।''[16] जाहिर है कि इस द्वार बंद करने की प्रवृत्ति ने हिंदू समाज में गतिशिलता को ही खंडित नहीं किया, बल्कि उसे अपने लोगों के प्रति ही उदासीन भी कर दिया। भारतीय समाज के पराजित हो जाने का एक मुख्य कारण उसमें आई यही जड़ता अथवा उदासीनता मानी जा सकती है।

**परंपरा से जाति का मोह इतना गहरा है कि धीरे-धीरे वह व्यक्ति की मुख्य पहचान के रूप में उभरने लगा। हिंदू अथवा भारतीय की पहचान गौण होने लगी और जाति की पहचान मुख्य स्थान लेने लगी। यहाँ इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि जाति प्रथा के बावजूद किसी भी जाति का अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। उसका अस्तित्व इसीलिए है क्योंकि वह जाति या फिर कोई भी जाति, एक बड़ी जाति शृंखला की कड़ी मात्र है। इसे सूत्र रूप में कहा जा सकता है कि भारत में जाति नहीं, बल्कि जातिशृंखला है।**

परंतु परंपरा से जाति का मोह इतना गहरा है कि धीरे-धीरे वह व्यक्ति की मुख्य पहचान के रूप में उभरने लगा। हिंदू अथवा भारतीय की पहचान गौण होने लगी और जाति की पहचान मुख्य स्थान लेने लगी। यहाँ इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि जाति प्रथा के बावजूद किसी भी जाति का अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। उसका अस्तित्व इसीलिए है क्योंकि वह जाति या फिर कोई भी जाति, एक बड़ी जाति

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 14

शृंखला की कड़ी मात्र है। इसे सूत्र रूप में कहा जा सकता है कि भारत में जाति नहीं, बल्कि जातिशृंखला है। यदि केवल जाति होती तो उसे समाप्त किया जा सकता था, परंतु जातिप्रथा से कैसे निपटा जाए। यह मुख्य प्रश्न है।

व्यवसाय अथवा कौशल के आधार पर जाति अथवा वर्ग विभाजन स्वाभाविक है और यह सारी दुनिया में विद्यमान है। लेकिन जन्म के आधार पर जाति विभाजन ने हिंदू समाज के भीतर गतिशीलता को समाप्त कर दिया है। जाति विभाजन के उन्मूलन की

**व्यवसाय अथवा कौशल के आधार पर जाति अथवा वर्ग विभाजन स्वाभाविक है और यह सारी दुनिया में विद्यमान है। लेकिन जन्म के आधार पर जाति विभाजन ने हिंदू समाज के भीतर गतिशीलता को समाप्त कर दिया है। जाति विभाजन को अंबेडकर मानव निर्मित ही मानते थे। इसलिए जन जागृति से यह आशा की जा सकती थी कि यदि प्रभावी प्रयास किए जाएँ तो इसे समाप्त करने में दिक्कत नहीं आएगी।**

बात चली तो यह प्रश्न उठा कि जाति विभाजन ईश्वरीय विधान है या मानव निर्मित व्यवस्था? ईश्वरीय विधान होता तो उसमें दखल अंदाजी करना मुश्किल होता। लेकिन मानवीय विधान तो किसी वक्त भी बदला जा सकता है। खासकर तब यदि वह कालप्रवाह से अप्रासांगिक हो चुका हो। अंबेडकर के अनुसार – ''सुधार के ये प्रयत्न जातियों के मूल से संबंधित विवाद से उत्पन्न हुए हैं कि क्या यह प्रथा सर्वोच्च स्तर के आदेशों से हुई या यह विशिष्ट परिस्थितियों में मानव समाज के सहज विकास का प्रतिफल है।''[17]

जाति-प्रथा को लेकर अंबेडकर ने अपने निष्कर्षों को सूत्र शैली में अत्यंत सुंदरता से प्रस्तुत किया है। जाति-समस्या के संबंध में वे अपने अध्ययन के चार पक्ष मानते हैं।

1. हिंदू जनसंख्या में विविध तत्त्वों के सम्मिश्रण के बावजूद इसमें दृढ़ सांस्कृतिक एकता है।
2. जातियाँ इस विराट सांस्कृतिक इकाई का अंग हैं।
3. शुरू में केवल एक ही जाति थी ।
4. इन्हीं वर्गों में अनुकरण या बहिष्कार से विभिन्न जातियाँ बन गईं।''[18]

यकीनन जाति विभाजन को अंबेडकर मानव निर्मित ही मानते थे। इसलिए जन जागृति से यह आशा की जा सकती थी कि यदि प्रभावी प्रयास किए जाएँ, तो इसे समाप्त करने में दिक्कत नहीं आएगी। परंतु एक दिक्कत बीच में आती है। जाति-प्रथा को अनेक ऐसे ग्रंथों में मान्यता दी गई है जिन्हें समाज में शास्त्र का दर्जा प्राप्त है, परंतु भारत में शास्त्रों को ईश्वरीय विधान मानने की परंपरा नहीं है। उनके वचनों में समाज की आस्था का स्तर बहुत ऊँचा है, लेकिन फिर भी वे किसी भी विषय पर अंतिम सत्य नहीं है। शायद यही कारण है कि भारतीय समाज में अनेक शास्त्रों की मान्यता है और स्मृतियों के क्षेत्र में भी विकास होता रहा और नई-नई स्मृतियाँ बनती रहीं। वर्तमान युग में शास्त्रों की अनेक बातें कालबाह्य हो गई हैं और आज उनकी अहमियत अकादमिक अध्ययन के लिए ही रह गई है। इसलिए जाति-प्रथा को यदि शास्त्रसम्मत भी मान लिया जाए तब भी उसके उन्मूलन में किसी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती। अंबेडकर को इस बात की चिंता थी कि हिंदू समाज में जाति को यदि धर्म का संरक्षण प्राप्त है तो इसके खिलाफ लड़ाई लड़ना मुश्किल हो जाएगा। शायद इसीलिए वह कई बार इस बात का आग्रह भी करते थे कि जब तक धर्मशास्त्रों को आग नहीं लगाई जा सकती, तब तक हिंदू समाज में से जाति व्यवस्था का कलंक समाप्त नहीं किया जा सकता। डॉ.अंबेडकर गुस्से में आकर कहते हैं कि ''सबसे पहले शास्त्रों में

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 15



डायनामाइट लगा देना चाहिए, तभी जातिप्रथा का अंत होगा।'' डायनामाइट लगाने का आलंकारिक अर्थ, शास्त्रों में से कालबाह्य वचनों को नकारना ही है। डॉ. अंबेडकर को विश्वास था कि ''यदि सारा समाज एकजुट हो जाता है तो कालबाह्य हो चुकी जाति प्रथा को समाप्त किया जा सकता है। उनके अनुसार जाति ईंट की दीवार जैसी कोई भौतिक वस्तु नहीं है। यह एक विचार है। यह एक मनःस्थिति है। इस मनःस्थिति की नीवँ शास्त्रों की पवित्रता की अवधारणा में निहित है। वास्तविक उपाय यह है कि प्रत्येक स्त्री पुरुष को शास्त्रों के बंधन से मुक्त किया जाए । ... लोगों के दिमाग को साफ किया जाए। तभी वे जाति-पाँति का भेदभाव समाप्त करेंगे। जाति प्रथा के पीछे का धार्मिक आधार समाप्त हो जाएगा तो रास्ता भी खुल जाएगा। अंबेडकर को विश्वास था कि जाति प्रथा के उन्मूलन का सही रास्ता है अंतर्जातीय विवाह। खून के मिलने से ही अपनेपन की भावना पैदा होगी। जब तक अपनत्व की, बंधुतत्व की भावना पैदा नहीं होगी, तब तक जाति प्रथा द्वारा पैदा की गई अलगाव की भावना भी समाप्त नहीं होगी।''[19]

## जाति प्रथा उन्मूलन की लड़ाई

आधुनिक युग में सवर्ण हिंदुओं ने भी जातिप्रथा के अप्राकृतिक विभाजन को समझ लिया है और यही कारण है कि इसको समाप्त करने के प्रयास भी हिंदू समाज के भीतर से हो रहे हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि अब यह माना जाने लगा है कि जातिप्रथा ईश्वरीय विधान नहीं है। यह मनुष्य द्वारा ही निर्मित है और अपने मूलस्वरूप में प्रकृति के विपरीत है। वैसे तो मध्यकाल का भक्ति आंदोलन भी एक प्रकार से जाति प्रथा से निर्मित सामाजिक असमानताओं और अस्पृश्यता के भी खिलाफ था। आधुनिक काल में भी ऐसा नहीं कि अंम्बेडकर से पूर्व किसी ने जाति उन्मूलन व अस्पृश्यता विनाश के लिए प्रयास न किया हो। अनेक लोगों ने इन मानवता विरोधी व्यवस्थाओं के खिलाफ प्रयास किए। ऊपर से देखने पर भीमराव अंबेडकर भी उसी परंपरा में आते हैं। लेकिन अन्य समाज सुधारकों व अंबेडकर में एक मौलिक अंतर है। उनमें से अधिकांश लोग सवर्ण जातियों के ही थे। उन्होंने यह कार्य आत्मिक बुद्धि से किया था। लेकिन अंबेडकर का कार्य आत्मानुभूति के कारण था। दोनों में बहुत अंतर है। आत्मिक बुद्धि कितनी भी संवेदनशील व व्यापक हो, तब भी अस्पृश्यता की प्रत्यक्ष दाहकता का केवल अनुमान ही किया जा सकता है, उसकी अनुभूति नहीं की जा सकती।''[20] अंबेडकर को इस अपमान की पग-पग पर अनुभूति हुई थी।

**आधुनिक युग में सवर्ण हिंदुओं ने भी जातिप्रथा के अप्राकृतिक विभाजन को समझ लिया है और यही कारण है कि इसको समाप्त करने के प्रयास भी हिंदू समाज के भीतर से हो रहे हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि अब यह माना जाने लगा है कि जातिप्रथा ईश्वरीय विधान नहीं है। यह मनुष्य द्वारा ही निर्मित है और अपने मूलस्वरूप में प्रकृति के विपरीत है। वैसे तो मध्यकाल का भक्ति आंदोलन भी एक प्रकार से जाति प्रथा से निर्मित सामाजिक असमानताओं और अस्पृश्यता के भी खिलाफ था।**

यूरोपीय जातियों को देश से बाहर कर, देश की राजनीतिक सत्ता पुनः देशवासियों के हाथ में आ जाए, इसके लिए गंभीर प्रयास 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के विफल हो जाने के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ ही प्रारंभ हुए। लेकिन उस समय राजनीतिक अधिकारों व सामाजिक सुधारों की लड़ाई साथ-साथ व एक दूसरे के पूरक के रूप में प्रारंभ हुई थी। अंबेडकर ने इसका उल्लेख करते हुए लिखा है– ''एक समय था जब यह माना जाता था कि सामाजिक

कुशलता के बिना अन्य कार्य क्षेत्रों में प्रगति असंभव है। कुप्रथाओं से फैली बुराइयों के कारण हिंदू समाज की कार्य कुशलता समाप्त हो चुकी है। अब इन बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए अथक प्रयास करने होंगे। इस तथ्य को समझ कर ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म के साथ ही सामाजिक सम्मेलन की भी स्थापना हुई। जहाँ कांग्रेस का संबंध देश के राजनीतिक संगठन में कमजोर तथ्यों को पारिभाषित करना था, वहाँ सामाजिक सम्मेलन हिंदू समाज के सामाजिक संगठन में कमजोर से कमजोर बातों को दूर करने में लगा हुआ था।''[21] इतिहास साक्षी है कि प्रारंभिक काल में कांग्रेस के अधिवेशन में ही सामाजिक सम्मेलन होता था। यह सम्मेलन एक प्रकार से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का हिस्सा

**प्रारंभिक काल में कांग्रेस के अधिवेशन में ही सामाजिक सम्मेलन होता था। यह सम्मेलन एक प्रकार से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का हिस्सा ही माना जाता था। लेकिन कुछ सालों में ही इस बात पर बहस शुरू हो गई कि राजनीतिक अधिकार और वंचितों को सामाजिक अधिकार, इन दोनों में से किसको प्राथमिकता दी जाए।**

ही माना जाता था। लेकिन कुछ सालों में ही इस बात पर बहस शुरू हो गई कि राजनीतिक अधिकार और वंचितों को सामाजिक अधिकार, इन दोनों में से किसको प्राथमिकता दी जाए। एक समूह का मानना था कि हिंदू समाज में सामाजिक सुधारों की गति को तेज किया जाना चाहिए और यह जरूरी है कि समाज में व्याप्त कुरीतियों को पकड़ा जाए। लेकिन दूसरा समुदाय यह मानता था कि सामाजिक सुधार तो होते रहेंगे, उसके कारण राजनीतिक अधिकारों की लड़ाई को धीमा नहीं किया जा सकता। कांग्रेस के भीतर की इस लड़ाई में समाज सुधारकों का समुदाय धीरे-धीरे हाशिये पर जाने लगा और राजनीतिक अधिकारों की वकालत करने वाला समुदाय अग्रणी भूमिका में आ खड़ा हुआ। कांग्रेस के भीतर कहा जाने लगा, पहले विदेशियों से सत्ता छीन ली जाए, उसके बाद घर में बैठ कर सामाजिक सुधार किए जा सकते हैं। कांग्रेस का आठवाँ अधिवेशन 1892 में प्रयागराज में हुआ था। डब्ल्यू. सी. बनर्जी ने उसकी अध्यक्षता की थी। तब तक कांग्रेस के भीतर सामाजिक सुधार व राजनीतिक अधिकार का प्रश्न भी उग्र हो चुका था। बनर्जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में इस विवाद का अंत कर दिया और निर्णय राजनीतिक अधिकारों की लड़ाई को प्राथमिकता के पक्ष में सुना दिया। बनर्जी के भाषण का वह अंश द्रष्टव्य है। ''मैं उन लोगों को कतई नहीं मानता जो कहते थे कि सामाजिक व्यवस्था को सुधारे बिना हम राजनीतिक व्यवस्था नहीं सुधार सकते। मुझे दोनों में कोई तालमेल नजर नहीं आता। क्या हम इसलिए राजनीतिक सुधार नहीं कर सकते कि क्योंकि हमारी विधवाएँ अविवाहित रह गईं या हमारी लड़कियों की शादियाँ दूसरे देशों की तुलना में जल्दी हो जाती हैं।''[22] अंबेडकर बनर्जी के इस भाषण को सामाजिक सुधार सम्मेलन की मृत्यु पर पढ़ा गया शोक संदेश बताते हैं।

अंबेडकर का कहना था कि यदि देश को राजनीतिक स्वतंत्रता मिल भी गई लेकिन हिंदू समाज में जाति की व्यवस्था वैसी की वैसी बनी रही तो दलित समाज को इस राजनीतिक आजादी से क्या हासिल होने वाला है? वे राजनीतिक स्वतंत्रता से भी ज्यादा महत्त्व सामाजिक स्वतंत्रता को मानते थे। अंबेडकर ने इस पराजय के कारणों का पोस्टमार्टम किया। उनके अनुसार– ''यह कैसे हुआ कि सामाजिक सुधार दल लड़ाई हार गया। इसे सही-सही रूप से समझने के लिए इस बात पर ध्यान देना जरूरी है कि समाजिक सुधार दल के लोग किस प्रकार के समाज सुधार के लिए आंदोलन कर रहे हैं।

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 17



इस संबंध में यह आवश्यक है कि हिंदू परिवार के सुधार के अर्थ में समाज सुधार और हिंदू समाज के पुनर्गठन तथा पुनर्निर्माण के अर्थ में समाज सुधार, इन दोनों में अंतर किया जाए। पहले प्रकार के समाज सुधार का संबंध विधवा विवाह, बाल विवाह आदि से है, जबकि दूसरे प्रकार के समाज सुधार का संबंध जाति प्रथा के उन्मूलन से है। सामाजिक सम्मेलन एक ऐसी संस्था थी, जिसका संबंध मुख्य रूप से ऊँची जाति के प्रबुद्ध हिंदुओं से था जो जाति प्रथा के उन्मूलन के लिए आंदोलन करना आवश्यक नहीं समझते थे या उनमें इसके लिए आंदोलन करने का साहस नहीं था। उन्होंने जबरन विधवापन, बाल-विवाह जैसी बुराइयों को, जो उनमें फैली हुई थी और जिन्हें वे खुद महसूस करते थे, दूर करने की भारी आवश्यकता को महसूस किया। वे हिंदू समाज में सुधार करने के लिए खड़े नहीं हुए थे। वह जो लड़ाई लड़ रहे थे, वह परिवार के सुधार के प्रश्नों पर ही केंद्रित थी। इसका संबंध जातिप्रथा को तोड़ने के अर्थ में समाज सुधार से नहीं था। समाज सुधारकों ने इस मुद्दे को कभी नहीं उठाया। यही कारण है कि सामाजिक सुधार दल समाप्त हो गया।''[23] तीन साल बाद 1895 में पुणे में कांग्रेस के ग्याहरवें अधिवेशन में तो समाजिक सुधार दल के लिए कांग्रेस के पंडाल में अपना जमावड़ा करना ही मुश्किल हो गया। अंबेडकर ने समाज सुधारक आंदोलनों के अंदर की कमजोरी को अत्यंत दक्षता से पकड़ा है। यह सुधार जाति उन्मूलन को लेकर नहीं थे, बल्कि सवर्ण जातियों के बीच फैली कुरीतियों को समाप्त करने के थे। ये ऐसी कुरीतियाँ थीं जो ऊँची जातियों में ज्यादा फैली हुई थी और जो जातियाँ ऊँची जातियों से जितनी दूर थी उनमें उतनी ही कम थी। यदि इसे सरल भाषा में कहा जाए तो यह घर की सफाई का आंदोलन था पूरे मोहल्ले की सफाई का नहीं। इस प्रकार के सफाई अभियान का जिस प्रकार का अंत हो सकता था वैसा ही हुआ। युग प्रवाह में सामाजिक कुरीतियाँ तो कुछ सीमा तक समाप्त हुई, लेकिन जाति प्रथा के बंधन ढ़ीले नहीं हुए।

इसके बाद अंबेडकर ने समाजवादियों और कम्यूनिस्टों के समाज परिवर्तन आंदोलनों की चर्चा की और उनके भीतर के खोखलेपन को उजागर किया। कांग्रेस के भीतर जिस प्रकार के प्रयास सामाजिक सुधार दल वालों ने किए, उसी से मिलते-जुलते उपाय समाजवादियों अथवा साम्यवादियों ने भी किए। लेकिन दुर्भाग्य से साम्यवादी जाति प्रथा के मूल तक नहीं पहुँचे या फिर उन्होंने इस बात की जरूरत ही नहीं समझी। वे तो कार्लमार्क्स की इस उक्ति को भारत में भी दोहराते रहे कि सारा झगड़ा अमीर और गरीब का है। एक समुदाय ऐसा है जिसका उत्पादन के साधनों पर कब्जा

**अंबेडकर ने समाजवादियों और कम्यूनिस्टों के समाज परिवर्तन आंदोलनों की चर्चा की और उनके भीतर के खोखलेपन को उजागर किया। कांग्रेस के भीतर जिस प्रकार के प्रयास सामाजिक सुधार दल वालों ने किए, उसी से मिलते-जुलते उपाय समाजवादियों अथवा साम्यवादियों ने भी किए। लेकिन दुर्भाग्य से साम्यवादी जाति प्रथा के मूल तक नहीं पहुँचे या फिर उन्होंने इस बात की जरूरत ही नहीं समझी।**

और दूसरा समुदाय ऐसा है जो अपने श्रम से इनके लिए उत्पादन करता है। वे भारत में कार्लमार्क्स का चश्मा लगाकर वर्ग भेद की परिकल्पना करते रहे, जाति भेद उनके लिए शायद कोई समस्या थी ही नहीं। या हो सकता है वे इस स्वप्न लोक में विचार रहे हों कि वर्ग संघर्ष के बाद सर्वहारा के हाथ में सत्ता आ जाने के बाद जाति भेद अपने आप समाप्त हो जाएगा। अंबेडकर ने समाजवादियों अथवा साम्यवादियों की इसी आयातित सोच पर कटाक्ष करते हुए लिखा–

''भारत के समाजवादी यूरोप में अपने साथियों का अनुसरण करते हुए इतिहास की आर्थिक व्याख्या को भारत के तथ्यों पर लागू करना चाहते हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य एक आर्थिक प्राणी है। उसके कार्यकलाप और अकांक्षाएँ आर्थिक तथ्यों से परिबद्ध हैं और सम्पत्ति ही सत्ता का एकमात्र स्रोत है। इसलिए वे इस बात का प्रचार करते हैं कि राजनीतिक और समाजिक सुधार केवल भारी भ्रम है। इसलिए आर्थिक सुधारों को अन्य हर प्रकार के सुधारों पर वरीयता दी जानी चाहिए। ऐसा सम्पत्ति के समानीकरण द्वारा ही हो सकता है। यह दलील दी जा सकती है कि आर्थिक उद्देश्य ही मनुष्य को प्रेरित करने वाला एक मात्र तत्त्व नहीं है। मानव समाज का कोई भी विद्यार्थी इस बात को

**''भारत के समाजवादी यूरोप में अपने साथियों का अनुसरण करते हुए इतिहास की आर्थिक व्याख्या को भारत के तथ्यों पर लागू करना चाहते हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य एक आर्थिक प्राणी है। उसके कार्यकलाप और अकांक्षाएँ आर्थिक तथ्यों से परिबद्ध हैं और सम्पत्ति ही सत्ता का एकमात्र स्रोत है। इसलिए वे इस बात का प्रचार करते हैं कि राजनीतिक और समाजिक सुधार केवल भारी भ्रम है। इसलिए आर्थिक सुधारों को अन्य हर प्रकार के सुधारों पर वरीयता दी जानी चाहिए।''**

**–डॉ. अंबेडकर**

स्वीकार नहीं कर सकता कि आर्थिक शक्ति ही एक मात्र शक्ति है। किसी व्यक्ति का सामाजिक स्तर ही अक्सर शक्ति का स्रोत बन जाता है और उसके प्रभाव से उसका प्राधिकार प्रदर्शित होता है। जैसा कि महात्माओं का सामान्य व्यक्ति के ऊपर प्रभाव रहा है। भारत में लखपति लोग अकिंचन साधुओं और फकीरों की आज्ञा क्यों मानते हैं? भारत में लाखों दरिद्र अपनी मामूली चीजों को भी जो उनकी एकमात्र संपत्ति होती है, बेचकर बनारस और मक्का क्यों जाते हैं? भारत के इतिहास में इस बात का चित्रण है कि धर्म सत्ता का स्रोत है, जहाँ पुजारी को सामान्य व्यक्ति से अधिक महत्त्व प्राप्त है और कभी-कभी तो यह प्रथम मजिस्ट्रेट से अधिक होता है। भारत में हर चीज यहाँ तक कि हड़ताल और चुनाव पर भी आसानी से धर्म का प्रभाव पड़ता है और वह ऐसी घटनाओं को धार्मिक मोड़ देता है।''[24]

लेकिन समाजवादी-साम्यवादी, हिंदू समाज के आंतरिक मनोविज्ञान को समझ नहीं पा रहे थे। मधुमिलये के अनुसार, ''भारत के वामपंथी बुद्धिजीवियों ने न केवल मार्क्स के उस विश्लेषण को ज्यों का त्यों अपनाया जो पश्चिमी यूरोप के पूँजीवाद की ऐतिहासिक प्रवृत्तियों के संबंध में उन्होंने प्रस्तुत किया था, अपितु उसके वर्ग सिद्धांत को भी अपनाया जिसे उन्होंने पश्चिमी यूरोप के पूर्वकालीन विचारों से लिया था। भारतीय वामपंथियों, बुद्धिजीवियों को यह बात सोचनी चाहिए थी कि यह वर्ग सिद्धांत भारतीय समाज में लागू नहीं होगा जो जन्म पर आधारित असंख्य जातियों में बँटा हुआ है। समाजवादियों तथा अन्य वामपंथी बुद्धिजीवियों ने अपनी सामाजिक समस्या की इस विशिष्टता को नहीं पहचाना।''[25]

जाति प्रथा को लेकर बहुत से लोग आग्रह करते हैं कि यह प्रथा मूलतः श्रम विभाजन पर आधारित है। पूर्व में ऐसा कभी रहा होगा बल्कि अब तो यह जन्म आधारित है। इतना ही नहीं जाति अथवा वर्ग के लिए व्यवसाय अथवा कौशल भी पूर्व निर्धारित हैं। जाति प्रथा के चलते कोई भी व्यक्ति अपना व्यवसाय बदलने के लिए भी स्वतंत्र नहीं है। औद्योगिकीकरण के युग में भी जाति व्यवस्था के चलते सीढ़ी के नीचे पायदान पर बैठी जातियों को उसका लाभ होने वाला नहीं है। अंबेडकर के अनुसार, उद्योग कभी भी स्थिर नहीं होता,

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 19



इसमें तेजी से और अचानक परिवर्तन होते हैं। ऐसे परिवर्तनों से व्यक्ति को अपना व्यवसाय बदलने की छूट होनी चाहिए। बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार व्यक्ति को अपने आप को ढालने की ऐसी स्वतंत्रता के बिना, उसके लिए अपनी आजीविका कमाना असंभव हो जाएगा। जातिप्रथा हिंदुओं को ऐसे व्यवसाय अपनाने की अनुमति नहीं देगी, जहाँ उनकी जरूरत है, यदि वे आनुवांशिक रूप से उनसे संबंधित नहीं हैं। यदि कोई हिंदू अपनी जाति के लिए निर्धारित पेशे के अलावा नए पेशे को अपनाने के बजाए भूखा मरता दिखाई देता है, तो उसका कारण जाति प्रथा की कठोरता ही है। पेशों के पुनर्समायोजन की छूट न देकर अधिक बेरोजगारी फैलती है जिसका सीधा कारण जाति प्रथा हैं, जो हमारे देश में मौजूद है। श्रम के विभाजन के रूप में जाति प्रथा में एक और गंभीर दोष है। जातिप्रथा द्वारा उत्पन्न श्रम का विभाजन इच्छा पर आधारित विभाजन नहीं है। इसमें वैयक्तिक भावना और वैयक्तिक वरीयता का कोई स्थान नहीं है। इसका आधार पूर्व नियति का सिद्धांत है। सामाजिक कार्यकुशलता का विचार हमें इस बात को स्वीकार करने पर विवश करता है कि औद्योगिक प्रणाली में सबसे बड़ा दोष निर्धनता नहीं है। इस प्रणाली में जो बड़ा कष्ट है वो यह है कि बहुत ज्यादा लोग ऐसे व्यवसायों में लगे हैं जिनके प्रति उनकी प्रवृत्ति नहीं है। यदि किसी को ऐसे व्यवसाय में निरंतर लगा रहना पड़े रहे, तो उस व्यक्ति को उससे पीछा छुड़ाने, उसके प्रति सद्भावना न होने और उससे बचने की इच्छा होती है। भारत में अनेक ऐसे व्यवसाय हैं, जिन्हें हिंदू निकृष्ट मानते हैं। इसलिए जो लोग उनमें लगे हैं वे उनसे पीछा छुड़ाने को आतुर रहते हैं। ऐसे व्यवसायों से बचने और उन्हें त्यागने की निरंतर इच्छा बनी रहती है। इसका एकमात्र कारण वह निराशजनक प्रभाव है, जो उनपर हिंदू धर्म द्वारा उनके उपर आरोपित कलंक के कारण पड़ता है। ऐसी व्यवस्था में क्या कार्यकुशलता हो सकती है, जिसमें न तो लोगों के दिल और न दिमाग अपने काम में होते हैं? इसलिए एक आर्थिक संगठन के रूप में जातिप्रथा एक हानिकारक व्यवस्था है, क्योंकि इसमें व्यक्ति की स्वाभाविक शक्तियों का दमन होता है और समाजिक नियमों की तत्कालीन आवश्यकताओं की प्रवृत्ति होती है।[26]

अंबेडकर का मानना है कि जाति प्रथा ने हिंदू समाज की जनचेतना को नष्ट कर दिया है। इससे समाज को न तो कोई आर्थिक लाभ हुआ है और न ही हिंदू-एकात्मता की भावना पैदा हुई है। इसके विपरीत इन दोनों क्षेत्रों में जाति प्रथा का नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। कोई भी व्यक्ति अपनी जाति के भाव से ऊपर उठ

**अंबेडकर का मानना है कि जाति प्रथा ने हिंदू समाज की जनचेतना को नष्ट कर दिया है। इससे समाज को न तो कोई आर्थिक लाभ हुआ है और न ही हिंदू-एकात्मता की भावना पैदा हुई है। इसके विपरीत इन दोनों क्षेत्रों में जाति प्रथा का नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। कोई भी व्यक्ति अपनी जाति के भाव से ऊपर उठ कर सोचता नहीं। इस लिहाज से तो हिंदू समाज एक मिथक ही माना जाएगा। जाति समाज धरातल पर दिखाई देता है। जाति व्यवस्था ने हिंदुओं के पूरे आचरण और व्यवहार को प्रभावित किया है।**

कर सोचता नहीं। इस लिहाज से तो हिंदू समाज एक मिथक ही माना जाएगा। जाति समाज धरातल पर दिखाई देता है। जाति व्यवस्था ने हिंदुओं के पूरे आचरण व्यवहार को प्रभावित किया है। अंबेडकर के अनुसार, हिंदुओं में जाति प्रथा के कारण किसी भी विषय पर सार्वजनिक सहमति का होना असंभव हो गया है। हिंदुओं के लिए उनकी जाति ही जनता है। उनका उत्तरदायित्व अपनी जाति तक ही सीमित है। गुणों का

आधार भी जाति ही है और नैतिकता का आधार भी जाति ही है। किसी सही व्यक्ति के प्रति उनकी सहानुभूति नहीं होती, यदि वह उनकी अपनी जाति का नहीं है। गुणों की कोई सराहना नहीं है। दुखियों की पुकार का कोई जबाब नहीं है। अगर सहायता है तो अपनी जाति के लिए , सहानुभूति है तो केवल अपनी जाति के लिए ।''[27]

इसीलिए अंबेडकर ने लाहौर में 'जात-पात तोड़क मंडल' के 1936 में होने वाले अधिवेशन के लिए लिखे गए भाषण के अंत में कहा, ''मेरे विचार में हिंदू समाज जब एक जातिहीन समाज बन जाएगा, तभी इसके पास स्वयं को बचाने के लिए काफी शक्ति होगी।''[28] अंबेडकर का यह भाषण जब 1936 में प्रकाशित हुआ तो इसको लेकर काफी विवाद शुरू हो गया। यहाँ तक कि महात्मा गांधी ने अपने पत्र 'हरिजन' में इस पर टिप्पणी करना अनिवार्य समझा। 'हरिजन' के 18 जुलाई, 1936 के अंक में महात्मा गांधी ने लिखा,''वर्ण और आश्रम व्यवस्था ऐसी संस्थाएँ हैं, जिनका जात-पात से कुछ लेना देना नहीं है। वर्ण व्यवस्था का नियम सिखाता है कि पैतृक धंधा अपनाकर हम अपनी रोजी-रोटी कमा सकते हैं। वह हमारे अधिकार को ही नहीं, बल्कि कर्तव्य को भी पारिभाषित करता है। वर्ण व्यवस्था अवश्य ही व्यवसाय के संदर्भ में बनी है, जो केवल मानवता के कल्याण के लिए है और किसी अन्य के लिए नहीं। इसका अर्थ यह भी है कि कोई भी व्यवसाय न तो अत्यधिक नीचा है और न ही अत्यधिक ऊँचा। सारे व्यवसाय अच्छे विधि सम्मत तथा स्तर में एक दम एक समान हैं।''[29]

**अंबेडकर ने जाति उन्मूलन के जो विविध उपाए सुझाए, उनमें से अनेक के लिए उन्होंने कालांतर में संविधान में व्यवस्था भी की। शासन की लोकतांत्रिक प्रणाली के चलते और वयस्क मताधिकार के कारण उन जातियों की सत्ता में भागीदारी भी निश्चित हुई जिन्हें समाज में निचले पायदान का माना जाता था। बहुत सीमा तक वर्ण के अनुसार व्यवसाय की बाध्यता भी बदली परिस्थितियों के कारण समाप्त हो गईं। व्यावहारिक रूप से वर्ण और व्यवसाय का आपसी रिश्ता समाप्त हो गया।**

अंबेडकर का भाषण जब 1936 में प्रकाशित हुआ तो इसको लेकर काफी विवाद शुरू हो गया। यहाँ तक कि महात्मा गांधी ने अपने पत्र 'हरिजन' में इस पर टिप्पणी करना अनिवार्य समझा। 'हरिजन' के 18 जुलाई, 1936 के अंक में महात्मा गांधी ने लिखा,''वर्ण और आश्रम व्यवस्था ऐसी संस्थाएँ हैं, जिनका जात-पात से कुछ लेना देना नहीं है। वर्ण व्यवस्था का नियम सिखाता है कि पैतृक धंधा अपनाकर हम अपनी रोजी-रोटी कमा सकते हैं। वह हमारे अधिकार को ही नहीं, बल्कि कर्तव्य को भी पारिभाषित करता है। वर्ण व्यवस्था अवश्य ही व्यवसाय के संदर्भ में बनी है, जो केवल मानवता के कल्याण के लिए है और किसी अन्य के लिए नहीं। इसका अर्थ यह भी है कि कोई भी व्यवसाय न तो अत्यधिक नीचा है और न ही अत्यधिक ऊँचा। सारे व्यवसाय अच्छे विधि सम्मत तथा स्तर में एक दम एक समान हैं।''[29]

अंबेडकर ने महात्मा गांधी के आलेख और आक्षेप का उत्तर दिया। उन्होंने इस उत्तर में जाति उन्मूलन में उठाए गए मुद्दों को सूत्रबद्ध किया–

1. जात-पात ने हिंदू समाज को बर्बाद किया है।
2. हिंदू समाज को चातुर्वर्ण्य के आधार पर अब पुनर्गठित करना असंभव है, क्योंकि वर्ण व्यवस्था रिसते हुए एक बर्तन की तरह है, या उस आदमी की तरह है जो नाक की सीध में दौड़ रहा है। वह अपने गुणों के कारण अपने को कायम रखने में अक्षम है तथा इसमें जाति व्यवस्था के रूप में विकृत हो जाने की प्रवृत्ति अन्तर्निहित है जबकि वर्ण का उल्लंघन करने पर कानूनी रोक नहीं लगती।
3. चातुर्वर्ण्य के आधार पर हिंदू समाज को पुनर्गठित करना हानिकारक भी है, क्योंकि वर्ण व्यवस्था ज्ञान प्राप्त करने के अवसर से वंचित कर लोगों को निम्न कोटि का बनाती है। हथियार धारण करने से वंचित कर उन्हें दुर्बल बनाती है।
4. हिंदू समाज को ऐसे धर्म के आधार पर पुनर्गठित करना चाहिए, जिसमें स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धांत को मान्यता दी जाए।
5. इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जाति और वर्ण के पीछे धार्मिक पवित्रता की भावना को नष्ट किया जाना चाहिए।
6. जाति और वर्ण की पवित्रता केवल तभी नष्ट हो

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 21



सकती है जब शास्त्रों की दिव्य सत्ता को इससे अलग कर दिया जाए।[30]

अंबेडकर ने जाति उन्मूलन के जो विविध उपाए सुझाए, उनमें से अनेक के लिए उन्होंने कालांतर में संविधान में व्यवस्था भी की। शासन की लोकतांत्रिक प्रणाली के चलते और वयस्क मताधिकार के कारण उन जातियों की सत्ता में भागीदारी भी निश्चित हुई जिन्हें समाज में निचले पायदान का माना जाता था। बहुत सीमा तक वर्ण के अनुसार व्यवसाय की बाध्यता भी बदली परिस्थितियों के कारण समाप्त हो गई। व्यावहारिक रूप से वर्ण और व्यवसाय का आपसी रिश्ता समाप्त हो गया। यह ठीक है कि अंबेडकर काल (1891-1956) से लेकर अब तक भारतीय अथवा हिंदू समाज की जाति व्यवस्था में परिवर्तन हुए हैं, लेकिन सामाजिक स्तर पर जाति भेद जितनी तेजी से समाप्त होना चाहिए था, उतनी तेजी से शायद नहीं हुआ। इसे देश का दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए कि अंग्रेजों के चले जाने के बाद विभिन्न राजनीतिक दलों ने सत्ता प्राप्त करने के लिए जाति-पाति को और मजबूती प्रदान करनी शुरू कर दी। जाति के आधार पर राजनीतिक दलों का गठन ही नहीं होने लगा, बल्कि सत्ता प्राप्ति के लिए विभिन्न जातियों को एक दूसरे के सामने भी लाने के प्रयास होने लगे। मामला यहाँ तक बढ़ा कि बाबा साहेब अंबेडकर का नाम लेने वाली सरकार उनके जातिविहीन हिंदू समाज के स्वप्न को पलीता लगाते हुए जनगणना को ही जाति आधारित बनाने लगी। अंबेडकर के लेखन और चिंतन का बिना किसी पूर्वाग्रह के अध्ययन किया जाए तो हिंदू समाज की अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है।

**लेखक हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला के कुलपति हैं।**

## संदर्भ

1. मधु लिमये, बाबा साहेब अंबेडकर-एक चिंतन, पृ. 26
2.भीमराव अंबेडकर, सं. नरेंद्र जाधव, आत्मकथा एवं जनसंवाद, पृ. 41
3. वही, पृष्ठ 47
4. धनंजय कीर, डा. बाबा साहेब अंबेडकर लाईफ एंड मिशन, पृ. 96
5. भीमराव अंबेडकर, सं. नरेंद्र जाधव, आत्मकथा एवं जनसंवाद, पृ. 100
6. बाबा साहब डॉ. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खंड 1, पृ 18
7. वही, पृ. 18
8. वही, पृ. 18
9. मधु लिमये, बाबा साहेब अंबेडकर-एक चिंतन, पृ. 20
10. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खंड 1, पृ. 29-30
11. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 35
12. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 35
13. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 29
14. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 27-28
15. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 30
16. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 27-28
17. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 35
18. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 35
19. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 90
20. दत्तोपंत ठेंगडी, डा. अंबेडकर और सामाजिक क्रांति की यात्रा, पृ. 84
21. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 55
22. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 56
23. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 59
24. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 62
25. मधु लिमये, बाबा साहेब अंबेडकर-एक चिंतन, पृ. 32
26. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 66-67
27. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 77
28. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 106
29. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 108 से उद्धृत
30. बाबा साहब डा. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खण्ड 1, पृ. 112

नोट- इस शोध पत्र में बाबा साहब डॉ. अंबेडकर, संपूर्ण वाड्मय, खंड 1 के 1993 के संस्करण का प्रयोग किया गया है ।

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 22

देश के सम्यक् विकास के लिए कुशल व अनुशासित जनशक्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इस अवधारणा के आधार पर यदि शिक्षा पद्धति, व्यापार व उद्योग जगत् तथा प्रशासनिक व्यवस्था की रचना की जाए, तो भारत पुनः समृद्धि के शिखर पर पहुँच सकता है। प्रस्तुत है इस संदर्भ में जनशक्ति विकास के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालता ओम प्रकाश दुबे का यह आलेख–

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 23

ओम प्रकाश दुबे

# जनशक्ति विकास में निहित है भारत की प्रगति

किसी भी समाज या राष्ट्र के विकास के लिए चाहे वह आध्यात्मिक विकास हो या शारीरिक, भौतिक, सामाजिक या आर्थिक उसका आधार व्यक्ति होना चाहिए। यदि व्यक्ति का विकास कर दिया जाए, तो व्यक्ति से रचित समाज का, समाज से रचित क्षेत्र का, क्षेत्र से रचित जनपद का, जनपद से रचित प्रदेश का और प्रदेश से रचित राष्ट्र का विकास सरल हो जाता है। आज भारत में व्यक्ति का नैतिक, सामाजिक, बौद्धिक तथा वैयक्तिक विकास सही ढंग से नहीं हो रहा है। इसीलिए हमारी समस्याएँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। हमारे देश की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि व्यक्ति के विकास के लिए सोचे बिना अनेक योजनाएँ बन रही हैं, जिसके कारण योजनाओं की सफलता में संशय पैदा हो रहा है। उदाहरण के लिए – किसी स्थान की सफाई के लिए कितनी भी योजनाएँ बना ली जाएँ और कितने भी कर्मचारी नियुक्त किए जाएँ, किंतु सफाई तब तक नहीं रखी जा सकती, जब तक कि वहाँ के रहने वाले लोगों में सफाई के प्रति लगाव और सफाई रखने की आदत का विकास न किया जाए। आज प्रश्न उठता है कि व्यक्ति का विकास कैसे किया जाए। इसके लिए आवश्यक है एक सुनियोजित कार्यक्रम के अंर्तगत व्यावहारिक तथा सदुपयोगी शिक्षा पद्धति। यदि जन शक्ति विकास यानी मैन पावर डेवलपमेंट को आधार बनाकर शिक्षा पद्धति का विकास किया जाए, तो सभी युवाओं में सकारात्मक ऊर्जा का प्रस्फुटन होगा। कहा जाता है कि बचपन के दिन खेलते और आनंद लेने के होते हैं, किंतु आज का बपचन बस्ते के बोझ से लदा हुआ और परीक्षाओं के तनाव से भरा हुआ कष्टदायक हो गया है। इसलिए आज के युवाओं में क्रोध, घृणा, सामाजिक कुंठा, प्रतिक्रियात्मक भावना तथा अन्य विकारों की दिन-प्रति-दिन वृद्धि हो रही है।

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 24

इस संसार में जो भी व्यक्ति जन्मा है, ईश्वर ने उसे किसी न किसी प्रकार के विशेष गुण से संपन्न करके अद्वितीय बनाया है। इसलिए शिक्षा पद्धति में ऐसे उपाय करने की आवश्यकता है जिससे समान शिक्षा के साथ बालक की प्रवृत्ति एवं विशेष गुण की पहचान कर उसका समग्र विकास किया जाए। कुछ सामान्य गुणों का विकास सभी के लिए अनिवार्य होना चाहिए, जिससे प्रत्येक व्यक्ति एक अच्छा एवं सभ्य नागरिक बन सके। इस दिशा में हमारे शिक्षा तथा सरकारी तंत्र को सोचने और कार्य करने की अति आवश्यकता है। आज गरीबी, दुर्व्यवस्था, भ्रष्टाचार और स्वार्थी-छटा

**इस संसार में जो भी व्यक्ति जन्मा है, ईश्वर ने उसे किसी न किसी प्रकार के विशेष गुण से संपन्न करके अद्वितीय बनाया है। इसलिए शिक्षा पद्धति में ऐसे उपाय करने की आवश्यकता है जिससे समान शिक्षा के साथ बालक की प्रवृत्ति एवं विशेष गुण की पहचान कर उसका समग्र विकास किया जाए। कुछ सामान्य गुणों का विकास सभी के लिए अनिवार्य होना चाहिए, जिससे प्रत्येक व्यक्ति एक अच्छा एवं सभ्य नागरिक बन सके।**

के कारण सवा सौ करोड़ से अधिक आबादी वाले देश में हम विश्व स्तर के योग्य व्यक्तियों का विकास नहीं कर पा रहे हैं। भारत में सही विकास का वातावरण न मिलने के कारण जब भारतीय विदेशों मे चले जाते है, नोबेल पुरस्कार पाने के योग्य हो जाते हैं। हमारे देश में सरकार तथा अन्य संस्थाओं द्वारा गरीबी उन्मूलन के लिए अनेक योजनाएँ चलाई जा रही हैं, किंतु यह जानना आवश्यक है कि बिना व्यक्ति के सही विकास के गरीबी उन्मूलन नहीं हो सकता। गरीबी दूर करने के लिए व्यक्ति का सम्यक् विकास करके उसके जीवन स्तर को मानवीय मापदंड पर स्थापित करना चाहिए।

जनशक्ति विकास का व्यापार तथा उद्योग जगत् में बहुत अधिक महत्त्व है। इसका साधारण व्यक्ति से लेकर प्रोफेशनल के लिए भी बहुत उपयोग है। इसका उद्देश्य किसी भी व्यक्ति, कारीगर, कलाकार, व्यवसायी, उद्यमी तथा प्रोफेशनल के अंदर निहित गुण का पूर्ण विकास करना होता है। यदि सही ढंग से जनशक्ति विकास का प्रयोग किया जाए तो व्यवसाय, उद्यम तथा सामाजिक जीवन में पूर्णता के निकट सफलता प्राप्त की जा सकती है। हमारे समाज में व्याप्त अनेक प्रकार के विकार समाप्त हो सकते हैं। अपराध में कमी आ सकती है। जनशक्ति विकास की विशेषता है कि बौद्धिक विकास के साथ-साथ व्यक्तित्व विकास भी होता है। व्यक्तित्व विकास से मनुष्य में समझदारी, व्यवहार कुशलता, परिस्थिति के अनुकूल कार्य प्रणाली का विकास तथा कई अनेक सद्गुणों का समावेश होता है। किसी भी उद्यम या व्यवसाय में धन एवं तकनीकी ज्ञान के साथ प्रशिक्षित एवं कुशल कार्मिक का होना भी आवश्यक है। किंतु यह आवश्यक है कि कार्यरत कार्मिक भी आर्थिक और सामाजिक रूप से प्रसन्न हो। यदि ऐसा नहीं होता है तो व्यवसाय अधिक दिन नहीं चल सकता। किसी भी स्थिति में प्रबंधन में सगे-संबंधी होने के नाते अयोग्य व्यक्ति को नहीं रखना चाहिए। एक अयोग्य व्यक्ति की सोच एवं गलत कार्य प्रणाली से व्यवसाय का सारा तरीका बिगड़ सकता है। संभवतः यही कारण है कि आज हमारे देश के कई उद्योग बंद होते जा रहे हैं। जन शक्ति विकास से देश, समाज एवं व्यक्ति की आर्थिक स्थिति बेहतर होती है। जनशक्ति विकास से व्यक्ति का तकनीकी और व्यावहारिक विकास तो होता है, उसकी कुशलता और नजरिये में भी बदलाव आता है। इसके साथ ही योग्यता में निखार व व्यावसायिक दक्षता बढ़ती है, जिससे समाज सापेक्ष नजरिये का भी विकास होता है।

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 25



सामान्यतः जनशक्ति विकास से व्यक्ति का चार स्तर पर विकास होता है। बौद्धिक विकास के साथ व्यक्तित्व का विकास, व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा के प्रति सजगता, समाज एवं मानवता के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण तथा कार्यदक्षता एवं रचनात्मक कुशलता का विकास होता है। जनशक्ति विकास मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों आयामों को समान ढंग से नियोजित करता है। इससे आयु, लिंग, श्रम, शक्ति, कितने घंटे काम किया गया और कितना धन अर्जित किया गया है आदि प्रभावित होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का अपना अलग व्यक्तित्व होता है और वह समाज में अपनी अलग पहचान बनाने का प्रयत्न करता है। एक अच्छे प्रबंधक की सबसे बड़ी योग्यता है उसकी भविष्य के प्रति दृष्टि। इसके बिना किसी योजना की सफलता संभव नहीं है। यह अनुभव एवं अध्ययन दोनों से प्राप्त होता है।

कोई भी व्यक्ति सफल तभी बन सकता है जब उसका सर्वश्रेष्ठ बनने में विश्वास हो, किसी कार्य के अनुपालन की महत्ता में उसका विश्वास हो, लोगों की महत्ता में विश्वास हो, जैसा स्वयं पर होता है। उत्कृष्ट गुणवत्ता और सेवा में विश्वास हो, उसकी संस्था के अधिकांश सदस्य गतिशील हों। वह व्यक्तिगत सशक्तीकरण के साथ-साथ सामुदायिक सेवा भावना रखता हो। कड़ी स्पर्धा के युग में सफलता तभी मिल सकती है जब हमारा लक्ष्य स्पष्ट हो। लक्ष्य एक मानचित्र की तरह है जो हमको गंतव्य तक लक्ष्य-विहीन जीवन से कहीं अधिक तेजी से पहुँचाने में हमारी सहायता करता है। सफल लोग अपना मूल्यवान समय, शांति और संयम से, लक्ष्य निर्माण की योजनाओं में लगाते हैं। ज्यादातर लोग समस्याओं के प्रबंधन में व्यस्त रहते हैं और अनिश्चित कार्यों के दलदल में फँसकर रह जाते हैं, जो उनकी सफलता की संभावना को कम कर देती है। अगर हम अपने लक्ष्य को पाना चाहते हैं तो हमें सदैव सजग रहना होगा कि हम चाहते क्या हैं? इस प्रक्रिया को जनशक्ति विकास कहते हैं।

**कोई भी व्यक्ति सफल तभी बन सकता है जब उसका सर्वश्रेष्ठ बनने में विश्वास हो और कड़ी स्पर्धा के युग में सफलता तभी मिल सकती है जब हमारा लक्ष्य स्पष्ट हो।**

हमें अपना जीवन केवल भाग्य के भरोसे नहीं छोड़ना चाहिए। लक्ष्य तय करके हम अपने भाग्य का निर्माण स्वयं कर सकते हैं। लक्ष्य निर्धारण हमारे जीवन में क्रमबद्धता पैदा करता है और प्रातः जल्दी उठने

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 26

**जन शक्ति विकास की अवधारणा के अनुसार हमें समयबद्धता के साथ एक जाँच सूची बनानी चाहिए जो हमें यह सुनिश्चित करे कि हमारी प्रत्येक गतिविधि लक्ष्य को पाने के प्रति कितनी सजग है। अल्पकालिक लक्ष्य की प्राप्ति हमें उपलब्धि की समझ पैदा करेगी और हमारे आत्मविश्ववास को भी बढ़ाएगी। हममें एक सफल व्यक्ति जैसी भावना पैदा होगी। हमें अपने लक्ष्य की ओर केंद्रित होकर तथा अंतिम परिणाम जो हम पाना चाहते हैं को ध्यान में रखकर अपनी गतिविधियों का निर्धारण करना चाहिए।**

एवं रात्रि में देर से सोने की एक वजह भी देता है। लक्ष्यों को जीवन के सभी छह क्षेत्रों में जैसे– वित्त एवं कैरियर, घर और परिवार, आध्यात्मिक, शारीरिक और स्वास्थ्य, सामाजिक एवं सांस्कृतिक, मानसिक एवं शैक्षणिक में सुनिश्चित करना चाहिए। जब हम अपने लक्ष्य को सुनिश्चित करें तो अपने पूरे परिवार को शामिल करना एक उत्तम विचार है। हमें अपने लक्ष्य को सकारात्मक तरीके से निर्धारित करना चाहिए, न कि नकारात्मक भाव से। लक्ष्य का निर्धारण हमको गतिशील बनाए रखने के लिए प्रेरित करने हेतु होना चाहिए। हम जितना अधिक सकारात्मक होकर लक्ष्य तय करेंगे, उतना अधिक सकारात्मक परिणाम हमको मिलेगा। एक सकारात्मक लक्ष्य ऐसा हो सकता है जैसे कि मैं 30 वर्ष की आयु तक उद्यमी बन जाऊँगा। जबकि दूसरी तरफ एक नकारात्मक लक्ष्य ऐसा हो सकता है कि मैं तब तक विवाह नहीं करूँगा जब तक कि मैं उद्यमी नहीं बन जाता। जब हम अपना लक्ष्य निर्धारित करें तो हमें, यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि हम अपनी क्षमताओं तथा शक्तियों का पूरा उपयोग कर रहे हैं। लक्ष्य निर्धारण में हमें उन क्षेत्रों में विचार करने की आवश्यकता होती है, जिसमें हम कमजोर हैं।

जन शक्ति विकास की अवधारणा के अनुसार हमें समयबद्धता के साथ एक जाँच सूची बनानी चाहिए जो हमें यह सुनिश्चित करे कि हमारी प्रत्येक गतिविधि लक्ष्य को पाने के प्रति कितनी सजग है। अल्पकालिक लक्ष्य की प्राप्ति हमें उपलब्धि की समझ पैदा करेगी और हमारे आत्मविश्ववास को भी बढ़ाएगी। हममें एक सफल व्यक्ति जैसी भावना पैदा होगी। हमें अपने लक्ष्य की ओर केंद्रित होकर तथा अंतिम परिणाम जो हम पाना चाहते हैं को ध्यान में रखकर अपनी गतिविधियों का निर्धारण करना चाहिए। अगर हम लक्ष्य बदलना चाहते हैं तो हमें इसको असफलता नहीं मानना चाहिए, बल्कि इसे एक जीत की तरह सोचकर हमें अपनी अंतर्दृष्टि से यह महसूस करना चाहिए कि कहीं कुछ गलत था। लक्ष्य की ओर जीतने की लालसा के साथ बढ़ना चाहिए। यह बात कुछ महत्त्व नहीं रखती कि हमने लक्ष्य क्या चुना है। हमको अपने लक्ष्य को पूरी वचनबद्धता और दृढ़संकल्प के साथ पूरा करने का प्रयत्न करना चाहिए। लक्ष्य तय करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि लक्ष्य हमारे जीवन में उत्साह और दृढ़ता को बढ़ाए। लक्ष्य इतने ऊँचे होने चाहिएँ कि वह हमको चुनौती दे सकें। यह जान लेना बहुत आवश्यक है कि यदि हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 27



के लिए अपनी क्षमता और दक्षता का पूरा उपयोग नहीं करते, तो सफलता भी आंशिक हो सकती है। जिस लक्ष्य को हम नहीं प्राप्त कर सके हैं उसके बारे में सोचकर अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिए। बल्कि सच तो यह है कि हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में जितना अधिक प्रयास करेंगे हम उतना बेहतर अनुभव करेंगे। उससे लक्ष्य के लिए हम उतनी हिम्मत जुटा पएँगें।

मझोले तथा बड़े आकार के सभी संगठनों में अन्य विभागों की भाँति जन शक्ति विकास एवं प्रबंधन विभाग होना चाहिए। किसी भी संगठन में चाहे इसकी प्रकृति जो भी हो, संसाधनों का प्रबंधन और इन पर नियंत्रण रखने के लिए जनशक्ति के प्रबंधन की आवश्यकता होती है। किसी भी संगठन की सफलता में उसकी जनशक्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है और इस दृष्टि से संगठन के जनशक्ति विभाग का दायित्व महत्त्वपूर्ण होता है। इन दायित्वों में प्रमुख रूप से शामिल हैं, संगठन के कार्य की क्षमता का पूर्णरूपेण लाभ उठाना, कार्यरत कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा रखना, कर्मचारियों की संगठन संचालन में पूरी भागीदारी तय करना, संगठन में अपनेपन का एहसास दिलाना, कर्मचारियों की क्षमता और दक्षता जुटाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करना आदि। संगठन की वर्तमान एवं भावी आवश्यकताओं के अनुसार जनशक्ति के विकास की योजना तैयार करनी होती है और उसके अनुसार संगठन में विभिन्न कार्यकलापों एवं दायित्वों के लिए उपयुक्त व्यक्तियों का चुनाव करना होता है। इसके अतिरिक्त जनशक्ति विकास का कार्य यह भी होता है कि प्रबंधन और कर्मचारियों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध बना रहे और मतभेदों को आपसी विचार-विमर्श एवं सुलह के जरिये सुलझा लिया जाए। जनशक्ति से जुड़ी कार्मिक नीतियाँ तैयार करने का कार्य भी जनशक्ति विकास है। जन शक्ति विकास के लिए धैर्य, विवेक, व्यवहार कुशलता, निष्पक्षता, संप्रेषण कुशलता आदि गुण आवश्यक हैं।

**किसी भी संगठन में सभी सहयोगियों की दक्षतापूर्ण भागीदारी का अनुपम उदाहरण है–मधुमक्खियों द्वारा एक-एक फूल से मकरंद का संग्रह व छत्ता निर्माण ।**

भारत में जनशक्ति विकास की स्थिति ठीक नहीं है। भारत की 95 प्रतिशत समस्याएँ मानव जनित हैं, जिसे जनशक्ति विकास और सही प्रबंधन द्वारा सुलझाया जा सकता है। एक अध्ययन के अनुसार 75 प्रतिशत प्रबंधक कार्यकुशल हैं, किंतु मूल्यों के प्रति जागरूक नहीं हैं। आज भारत के संपूर्ण विकास के लिए आवश्यकता है 100 प्रतिशत कार्यकुशल और मूल्य संरक्षक प्रबंधकों की जो जन साधारण के विकास और उनकी उन्नति के लिए कार्य करें।

**लेखक जनशक्ति विकास और प्रबंध सलाहकार हैं।**

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 28

भारतीय दर्शन अध्यात्मवादी होने के साथ ही भौतिक ज्ञान को नकारता नहीं है। वेदों के मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने कहा है कि विद्या (आत्म विज्ञान) और अविद्या (पदार्थ विज्ञान) दोनों विद्याएँ मिलकर ही ब्रह्म (सत्य) विद्या होती है। इसके विपरीत पश्चिम ने केवल पदार्थ की सत्ता को ही स्वीकार किया और अध्यात्म को पूरी तरह नकार दिया। पश्चिम के प्रभुत्त्व के कारण दुनिया में भौतिकवाद का बोल-बाला बढ़ा और भारतीय अध्यात्म को कर्मकांड मात्र की संज्ञा दे दी गई। लेकिन आधुनिक भौतिक विज्ञान ने 'क्वांटम' की खोज से वैदिक अवधारणाओं की पुष्टि कर यह सिद्ध कर दिया कि विद्या और अविद्या की संगति के बिना सत्य का साक्षात्कार असंभव है। प्रस्तुत है वेद और विज्ञान की संगति का गंभीर विश्लेषण करता आनन्द आदीश का यह लेख–

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 29

# वेद एवं विज्ञान : संगच्छध्वं! संवदध्वं !!

ईसवी सन् की उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के संधि-स्थल से 10 वर्ष पूर्व अर्थात् 1890 तथा 10 वर्ष पश्चात् अर्थात् 1910 के बीच के 20 वर्ष के काल को मैं अपनी पृथ्वी ही नहीं, संपूर्ण सृष्टि की दृष्टि से अनेकानेक नवोद्भावनाओं और संभावनाओं का काल मानता हूँ। बीस वर्ष के इस अपेक्षाकृत लघुकाल में ऐसा कुछ अनपेक्षित घटित हो गया जिसने संसार के सर्वाधिक बुद्धिमान व विचारवान दर्शनिकों, वैज्ञानिकों और आध्यात्मिक विभूतियों को न केवल वेदांत दर्शन की ओर आकर्षित किया, अपितु स्वयं अपने (मानवजाति), अपने परिवेश तथा सर्वत्र व्याप्त अंतरिक्ष की ओर देखने के अपने नजरिये में आमूल-चूल परिवर्तन करने के लिए भी मजबूर कर दिया।

सन् 1893 में अमेरिका के शिकागो शहर में आयोजित विश्व धर्म-सम्मेलन में अपने प्रभावी व्यक्तित्व, तात्त्विक उद्बोधन और ऋतम्भरा प्रज्ञा के बल पर स्वामी विवेकानंद एक ऐसी विस्मयकारी आध्यात्मिक विभूति के रूप में विश्व पटल पर उदित हुए, जिन्होंने वेदांत की वैज्ञानिक व्याख्या द्वारा सामान्य जन को तो सम्मोहित किया ही, प्रबुद्ध वैज्ञानिकों को भी चकित कर दिया, जिसके चमत्कारिक परिणाम भौतिकी के क्षेत्र में भी युगांतरकारी सिद्ध हुए, जिससे वेद और विज्ञान की कृत्रिम विभाजक रेखा को तहस-नहस कर स्वस्थ,

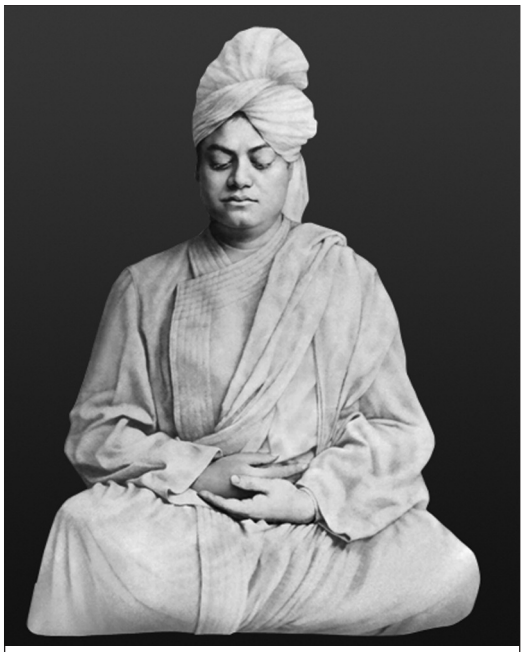

**पश्चिम ने जिसे सृष्टि-रचना बताया, वेदांत ने उसे सदैव उद्घाटन की संज्ञा से संबोधित किया क्योंकि कोई भी भारतीय संप्रदाय ऐसा नहीं है जो नितांत अभाव जैसी किसी स्थिति से प्रभाव निर्माण करने में विश्वास करता हो, जैसा कि पश्चिमी दर्शन की मान्यता और धारणा है। हम भारतीय रचना नहीं, पहले से ही विद्यमान शाश्वत सत्य के उद्घाटन के दर्शन में विश्वास करते हैं। –स्वामी विवेकानंद**

सात्विक सह-अस्तित्व का मार्ग प्रशस्त करने में सहायता मिली।

### आकाश, प्राण और महत्

स्वामी विवेकानंद द्वारा सन् 1895 में अपने एक अंग्रेज मित्र को लिखे पत्र से प्रमाणित होता है कि वे स्वयं उस समय के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों और उनकी विस्मयकारी खोजों से न केवल अनभिज्ञ नहीं थे, अपितु उनके जीवंत सम्पर्क में थे क्योंकि वे वेदांत और विज्ञान को प्रतिद्वंद्वी नहीं, एक दूसरे का पूरक मानते थे। तत्कालीन प्रसिद्ध वैज्ञानिक निकोला तेस्ला पर उनके सम्पर्क के कारण वेदांत की गहरी छाप पड़ी थी, जो जीवन पर्यंत बनी रही। स्वामी जी ने अपने एक मित्र को लिखा भी था – ''उनका (तेस्ला) विचार है कि वे वैज्ञानिक रीति से यह सिद्ध कर सकते हैं कि अंतरिक्ष में व्याप्त ऊर्जा (Energy) और पदार्थ (Matter) को कार्यशील शक्ति के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। अगले सप्ताह उनसे होने वाली भेंट के समय मैं यह प्रयोग देखने वाला हूँ। ऐसा होने पर तो वेदांत की सृष्टिमूलक अवधारणाओं को बहुत बल मिलेगा। वेदांत और विज्ञान की घनिष्ठ संगति मुझे सन्निकट नजर आ रही है।''(स्वामी विवेकानंद समग्र, खंड 5)।

पश्चिमी देशों के अपने प्रवास के दौरान स्वामी जी ने वेदांत के सृष्टि उत्पत्ति संबंधी उद्बोधनों में सदैव इस तथ्य पर बल दिया कि पश्चिम ने जिसे सृष्टि-रचना (Creation) बताया, वेदांत ने उसे सदैव उद्घाटन (Projection) की संज्ञा से संबोधित किया, क्योंकि कोई भी भारतीय संप्रदाय ऐसा नहीं है जो नितांत अभाव जैसी किसी स्थिति से प्रभाव निर्माण करने में विश्वास करता हो, जैसा कि पश्चिमी दर्शन की मान्यता और धारणा है। हम भारतीय रचना नहीं, पहले से ही विद्यमान शाश्वत सत्य के उद्घाटन के दर्शन में विश्वास करते हैं।

(The word which is Creation in the English language is in sanskrit exactly Projection, because there is no Indian sect which believes in creation as it is regarded in the West– a something coming out of nothing. What we mean by creation, is projection of that which already exists. (The Complete works of Swami vivekanand, Volume- I.)

वेदांतिक दर्शन को और अधिक स्पष्ट करते हुए स्वामी जी कहते थे कि संपूर्ण सृष्टि संपदा मूल पदार्थ 'आकाश'(Matter) से तथा संपूर्ण ऊर्जा –आकर्षण,

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 31



विकर्षण अथवा जीवन–मूल ऊर्जा 'प्राण' (Energy) से निसृत है। चक्रीय उद्घाटन (Cyclic Projection) की प्रारंभिक अवस्था में आकाश जब स्थिर, अदृश्य अवस्था में होता है, तो प्राण (ऊर्जा) की सक्रियता के कारण 'आकाश' से दृश्यमान आकृतियाँ (Grosser forms)–पेड़-पौधे, जीव-जंतु, मनुष्य, नक्षत्र आदि –– उद्घटित होते हैं। बृहद् काल के पश्चात् यह विस्तार संकुचन में परिवर्तित होने लगता है और पुनः उसी मूल 'आकाश' और 'प्राण' में विलीन हो जाता है। उद्घाटन-संवर्धन-संकुचन का यह शाश्वत चक्र अनादि और अनंत है।

'आकाश' और 'प्राण' के अतिरिक्त एक और तत्त्व है जिसे महत् (Cosmic Mind) कहते हैं, जो आकाश और प्राण की सृष्टि नहीं करता अपितु स्वयं अपने को ही उनमें परिवर्तित करता रहता है।

यह अकारण नहीं है कि निकोला तेस्ला ने अपने लेखन में सदैव ऊर्जा (Energy) और पदार्थ (Matter) के लिए क्रमशः संस्कृत के 'प्राण' तथा 'आकाश' शब्दों का प्रयोग किया है क्योंकि वेदांतिक विचार अनादि काल से इन्हीं के माध्यम से सम्यक् रूप में संप्रेषित किया जाता रहा है।

तेस्ला वेदांत के इस विचार से अभिभूत थे कि अंतरिक्ष एक ऐसी सचेतन गतिमान व्याप्ति है जो अपरिमित ऊर्जा से लबालब भरी पड़ी है, जिसे कहीं भी, कभी भी जोता जा सकता है।

इस बात के भी पुष्ट प्रमाण मिलते हैं कि तत्कालीन दो अन्य प्रसिद्ध वैज्ञानिक लॉर्ड केल्विन तथा वाल्टर रसेल भी स्वामी विवेकानंद द्वारा प्रचारित एवं सहस्रों वर्ष पूर्व प्रस्थापित वेद की विज्ञान संबंधी अवधारणाओं से अत्यधिक प्रभावित थे। इनके अतिरिक्त स्वामी जी न्यूयार्क में तत्कालीन प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर विलियम थॉम्पसन तथा प्रोफेसर हेल्महोल्ट्ज को भी अपने संपर्क से प्रभावित करने में सफल हो चुके थे। कहने का अर्थ यही है कि वेदांत दर्शन की वैज्ञानिकों के बीच स्वीकार्यता बढ़ रही थी।

तेस्ला को विश्वास था कि वे अंतरिक्ष में व्याप्त ऊर्जा को वैज्ञानिक विधि से किसी भी निर्धारित गंतव्य स्थल पर बेतार के माध्यम से पहुँचाने में सफलता प्राप्त कर लेंगे, जिससे विश्व में प्रत्येक देश-प्रदेश ही नहीं, व्यक्ति भी लगभग मुफ्त ऊर्जा प्राप्त करने में सक्षम हो जाएगा। यद्यपि तेस्ला अपने प्रयोगों में सफल न हो सके; तो भी वेदांत में उनकी निष्ठा जीवनपर्यंत बनी रही।

परंतु विधाता की योजना कुछ और थी। वेद और विज्ञान की यह युति सम्यक् रूप से स्थापित हो, इसके

**भारत की प्रारंभ से ही यह मान्यता रही है कि वेद ज्ञान है, तो विशिष्ट ज्ञान है विज्ञान । वेद संपूर्ण है, तो विज्ञान आंशिक। वेद परा व अपरा दोनों विद्या को अपनी परिधि में लिए है; जबकि विज्ञान मात्र अपरा को। वेदत्रयी संसार का प्राचीनतम ज्ञान कोष है। यद्यपि मूल एक ही वेद से चारों वेदों का संहितीकरण त्रेतायुग में हुआ तथापि पाश्चात्यों के मत में उनमें भी ऋग्वेद ही प्राचीनतम है। उसमें ज्ञान और विज्ञान का समावेश है जिन्हें इसमें परा और अपरा नाम दिए गए हैं।**

लिए सन् 1900 तक प्रतीक्षा करनी पड़ी जब महान् वैज्ञानिक मैक्स प्लैंक ने क्वांटम फिजिक्स की नीवँ रखी।

दो वर्ष के अनंतर ही सन् 1902 में स्वामी विवेकानंद का स्वर्गवास हो गया।

भारत की प्रारंभ से ही यह मान्यता रही है कि वेद ज्ञान है, तो विशिष्ट ज्ञान है विज्ञान । वेद संपूर्ण है, तो विज्ञान आंशिक। वेद परा व अपरा दोनों विद्या को अपनी परिधि में लिए है; जबकि विज्ञान मात्र अपरा को। वेदत्रयी संसार का प्राचीनतम ज्ञान कोष है। यद्यपि मूल एक ही वेद से चारों वेदों का संहितीकरण त्रेतायुग में हुआ तथापि

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 32

पाश्चात्यों के मत में उनमें भी ऋग्वेद ही प्राचीनतम है। उसमें ज्ञान और विज्ञान का समावेश है जिन्हें इसमें परा और अपरा नाम दिए गए हैं। ऋग्वेद के प्रथम मंडल में ही जिज्ञासा प्रकट की गई है कि जो नक्षत्र बहुत उच्च स्थान पर रात्रि में दिखाई देते हैं, वे दिन में कहाँ चले जाते हैं? दसवें मंडल के पुरुष सूक्त में संसार की भौतिक एवं सामाजिक व्यवस्था दी गई है। उसी में नासदीय सूक्त में भौतिक ज्ञान अर्थात् अपरा विद्या

**पाश्चात्य मान्यता के अनुसार ईश्वर ने सृष्टि की रचना ईसा से 4004 वर्ष पूर्व एक निश्चित दिवस और समय पर की और मल-मिट्टी से निर्मित एडम को ईडन वाटिका में छोड़कर उसकी एक पसली से ईव नामक महिला का निर्माण किया तथा निर्देश दिया कि वे वहाँ उगे फलों से, वर्जित फल सेब को छोड़कर, अपनी क्षुधा शाँत कर, चर-अचर जगत् पर शासन करने के लिए स्वतंत्र हैं। उन्हीं की कामवासना जनित संतति मानव समाज के रूप में पृथ्वी पर फैलती जाती है। क्योंकि पापकर्म से उत्पन्न हुई है, इसलिए मानव जाति की, मूल पाप से मुक्ति के लिए ईसाई मत में अपने मतावलंबियों का शुद्धिकरण (बपतिस्मा) किया जाता है। जड़-पदार्थ, मल-मिट्टी से उद्भूत होने के कारण पश्चिमी दर्शन अपने मूल रूप में जड़वादी है।**

मुख्य है। परा और अपरा दोनों विद्याओं से मिलकर ही ब्रह्म विद्या होती है, यह उपनिषदों से स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसके विपरीत पश्चिमी देशों का चिंतन एकांगी रहा है क्योंकि वहाँ परा विद्या को बिल्कुल नकार कर, अपरा विद्या को ही सब कुछ मानकर उसी को विज्ञान की श्रेणी में रखा गया है और सत्य माना गया है। परंतु भारत में अभी भी तात्त्विक दृष्टया 'परा' और 'अपरा' अर्थात् ज्ञान और विज्ञान दोनों ही तत्त्वज्ञान में मान्य और सम्मान्य हैं।

## पश्चिम की भ्रांत अवधारणा

सुदूर भूतकाल में घटित एवं कालांतर में वर्णित पौराणिक घटनाओं की सत्यता अथवा कल्पकता का प्रमाण हमारे पास अभी तक न भी हो, तो भी जन सामान्य में प्रचलित/स्वीकृत मान्यताओं के आधार पर अनेक देशों के तत्कालीन समाज की मनोदशा एवं वहाँ के वर्तमान जनमानस की मनोरचना का आभास तो हमें हो ही जाता है। उदाहरण के लिए हम पश्चिम और पूर्वी देशों की संसार-उत्पत्ति संबंधी अवधारणा को लें। पाश्चात्य देशों में व्याप्त मान्यता के अनुसार ईश्वर ने सृष्टि की रचना ईसा से 4004 वर्ष पूर्व एक निश्चित दिवस और समय पर की। तत्पश्चात् वहीं की मल-मिट्टी से निर्मित एडम (Adam) नामक व्यक्ति को ईडन वाटिका (Garden of Eden) में छोड़कर उसकी एक पसली से ईव (Eve) नामक महिला का निर्माण किया तथा निर्देश दिया कि वे वहाँ उगे फलों से, वर्जित फल सेब को छोड़कर (Forbidden Fruit), अपनी क्षुधा शांत कर, चर-अचर जगत् पर शासन करने के लिए स्वतंत्र हैं। मुस्लिम सूत्रों में इस मानव युगल का नाम 'आदम' और हव्वा'के रूप में जाना जाता है। अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध होली-बाइबल के पृष्ठ 3 पर ही दूसरे प्रकरण के अन्तर्गत यह सब लिखा है। "The lord God formed the man from the dust of the ground and breathed into his nostrils the breath of life"। संक्षेप में कथा आगे बढ़कर सर्प रूपधारी शैतान द्वारा ईव को उसी 'वर्जित सेब' की ओर आकर्षित कराती है। परिणाम स्वरूप ईश्वर की अवहेलना कर दोनों वह वर्जित फल चखते हैं। (इसी अवधारणा के परिणाम स्वरूप अंग्रेजी का मुहावरा Apple of Discord (झगड़े की जड़) भी प्रचलित हो गया, जिसने अभी तक भी मानव जाति का पीछा नहीं छोड़ा है।) तत्काल उन्हें अपनी नग्नावस्था

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 33



तथा लिंग भेद का एहसास हो जाता है। पत्तों-लताओं आदि से अपनी नग्नता को ढक कर जीवन यापन करना प्रारंभ करते हैं। उन्हीं की कामवासना जनित संतति, मानव समाज के रूप में पृथ्वी पर फैलती जाती है। क्योंकि पापकर्म से उत्पन्न हुई है, इसलिए मानव जाति की, मूल पाप (Original Sin) से मुक्ति के लिए ईसाई मत में अपने मतावलंबियों का शुद्धिकरण (बपतिस्मा) किया जाता है। हीब्रू, आर्मेइका तथा ग्रीक परंपराओं में यह कथा लगभग समान रूप में उपलब्ध होती है। ओल्ड टेस्टामेंट (Old Testament) के दूसरे आख्यान के 1 से 11 प्रकरण में भी इसका विस्तृत विवरण उपलब्ध है और पश्चिमी जगत् की मूलभूत ईसाई परंपरा के रूप में स्थापित है। जड़-पदार्थ, मल-मिट्टी से उद्भूत होने के कारण पश्चिमी दर्शन अपने मूल रूप में जड़वादी है।

पवित्रता तथा शुद्धि के लिए तन को ही आधार मानकर अब्राहम दर्शन के तीनों ही प्रमुख मतावलंबि्यों-- यहूदियों, ईसाइयों तथा मुसलमानों में सुन्नत अथवा खतना (circumcision) जैसी प्रथा भी प्रारंभ हो गई, जिसके अंतर्गत पुरुष ही नहीं महिलाओं की भी जननेद्रियों के ऊपर के कुछ हिस्से से खाल को काटने का अजीबो-गरीब उपक्रम शामिल है। कालांतर में ईसाइयों में तो यह प्रथा धीरे-धीरे समाप्त प्रायः होती नजर आती है, परंतु शेष दोनों संप्रदायों में तो अभी 21वीं शताब्दी में भी इस प्रथा का आग्रहपूर्वक अनुपालन जारी है। यहाँ तक भी हुआ कि पारसियों तक ने भी इसे अपनाना प्रारंभ कर दिया जिसके विरोध में भारतीय सर्वोच्च न्यायालय में किसी भद्र पुरुष की याचिका अभी लंबित है। आँकड़े बताते हैं कि दुनिया की कुल पुरुष आबादी के 36 प्रतिशत लोगों का खतना हो चुका है, जिसमें से 68 प्रतिशत व्यक्ति इस्लाम को मानने वाले हैं। इससे भी अधिक चौंकाने वाला तथ्य यह है कि कुरान शरीफ में, जो मुस्लिम आचार संहिता का अकाट्य आधार है, इस प्रथा को मानने का न कोई आदेश है और न ही आधार। भारत की पवित्रता संबंधी मनसा, वाचा, कर्मणा मान्यता की तुलना में उपर्युक्त विचार कितना अजीब और अवैज्ञानिक है, यह कोई सामान्य विवेकशील प्राणी भी समझ सकता है।

इसके लिए मानव सृष्टि संबंधी हिंदू मान्यता पर भी एक विहंगम दृष्टि डाल लेते हैं। हिंदू परंपरा में सृष्टि

**हिंदू परंपरा में सृष्टि परमब्रह्म परमात्मा द्वारा उद्भासित है। परमात्मा सत्य का ही स्वरूप है। सत्य एक है, अद्वैत है। परबह्म परमात्मा ने संकल्प किया -एकोऽहं बहुस्याम्। परब्रह्म ने स्वयं अपने ही अंश से सृष्टि उद्घाटित की। क्योंकि वह परम-आत्मा है, इसी कारण उसकी सृष्टि में भी आत्मा का अंश है। वह जड़ हो ही नहीं सकती, चेतन ही होगी। अतः ब्रह्म द्वारा उद्घाटित यह सृष्टि सचेतन है। स्वयं परमात्मा की आत्मा से उद्भासित है। जड़ व चेतन का भेद अवैज्ञानिक है।**

परमब्रह्म परमात्मा द्वारा उद्भासित है। परमात्मा सत्य का ही स्वरूप है। सत्य एक है, अद्वैत है। एक अकेला रमण नहीं कर सकता। एकाकी न रमते (बृहदारण्यक उपनिषद् 1/4/3)। अतः मैं एक हूँ, इस ज्ञान का स्वाभाविक परिणाम बहुत बनूँगा बहुस्याम (छान्दोग्योपनिषद् 6/2/3) के रूप में होना निश्चित है। इसी सिद्धांत के अनुरूप परबह्म परमात्मा ने संकल्प किया –एकोऽहं बहुस्याम्। ब्रह्म ने स्वयं अपने ही अंश से सृष्टि उद्घाटित की। क्योंकि वह परम-आत्मा है, इसी कारण उसकी सृष्टि में भी आत्मा का अंश है। वह जड़ हो ही नहीं सकती, चेतन ही होगी। अतः ब्रह्म द्वारा उद्घाटित यह सृष्टि सचेतन है। स्वयं परमात्मा की आत्मा से उद्भासित है। जड़ और चेतन का यह भेद अवैज्ञानिक है।

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 34

## ऋत् और सत् की माया

ब्रह्मसूत्र में ब्रह्म को विश्व के विकास, पोषण और विच्छेदन का स्वप्रेरित कारण बताया है। गौड़पाद की 'माण्डूक्य कारिका' के अनुसार सर्व व्यापकता का स्रोत है, ज्ञानातीत तुरिय और हमारा चेतन जो बाह्य सृष्टि की रचना करता है। वेदांत दर्शन का स्रोत व्यास का ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् एवं भगवद्गीता हैं। वादरायण ने जीवन, अस्तित्व और विश्व के संबंध में मूलभूत सत्यों व शिक्षाओं को सूत्रबद्ध करने का महती कार्य किया है।

भारतीय ऋषियों-मुनियों ने जिस सत्य का विवेचन किया उसे दर्शानिक भाषा में 'ऋत्' कहते हैं। 'ऋत्' का उद्घाटन उसी चित्त में संभव है, जहाँ मन तथा आचरण की शुद्धता तथा निर्मलता है। हमारे प्राचीन ऋषि योगी थे। अतः समाधि अवस्था में ऋतम्भरा प्रज्ञा

**ऋत् का उद्घाटन उसी चित्त में संभव है जहाँ मन तथा आचरण की शुद्धता व निर्मलता है। हमारे ऋषि योगी थे। अतः समाधि अवस्था में ऋतम्भरा प्रज्ञा के आलोक में उन्हें प्रकृति के सूक्ष्मतम रहस्य ही नहीं, परम ब्रह्म का भी साक्षात्कार हो पाता था। ऋषियों के मनोभावों को उन जैसे अंतःकरण की निर्मलता और संकल्प शक्ति की दिव्यावस्था के बिना पाना असंभव है और वह दीर्घकालीन एकनिष्ठ तप के बिना अलभ्य है।**

के आलोक में उन्हें प्रकृति के सूक्ष्मतम रहस्य ही नहीं, परम ब्रह्म का भी साक्षात्कार हो पाता था। ऋषियों के मनोभावों को उन जैसे अंतःकरण की निर्मलता और संकल्पशक्ति की दिव्यावस्था के बिना पाना असंभव है और वह दीर्घकालीन एकनिष्ठ तप के बिना अलभ्य है। यह समस्त विश्व ऋत् और सत्य से पूर्ण है, परंतु अधिकांश सामान्य व्यक्तियों के लिए वह उनकी निज की अन्तःस्थ तमिस्रा के कारण रहस्य बना रहता है। आत्मदर्शी भारतीय ऋषियों-मनीषियों का दर्शन श्रवण, मनन और निदिध्यासन (ध्यान योग की उच्च भूमिका) की अटल भूमिका से उद्घाटित हुआ। बृहदारण्यक उपनिषद् (2/4/5) में कहा भी है– सर्व विदितम् आत्मनो वा अरे दर्शनेन् सत्या विज्ञानेनेदं आत्मा वा अरे दृष्टव्य; श्रोतव्य; मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः...।

इसी कारण वे सर्वज्ञ कहलाए तथा उनके वंशज पीढ़ी दर पीढ़ी श्रुति, स्मृति के माध्यम से इस अविरल ज्ञान गंगा को प्रवाहित करने में तो सफल रहे, संघर्ष भरे दीर्घकाल में ज्ञानकोष तो किसी प्रकार बचा पाए, परंतु उसकी कुंजी कहीं खो बैठे।

ब्रह्म दिक् और काल के परे है, परंतु संसार में माया के कारण अनेक रूपों (सत्यों) में बंटा दिखाई पड़ता है। दिक् और काल में कृतित्व सिर्फ आभास (विवर्त) है, अविद्या है जिसे शंकराचार्य प्रच्छन्न शक्ति का अध्यारोपण या माया कहते हैं। स्वामी विवेकानंद के अनुसार शंकराचार्य ही प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने दिक्-काल और कार्य-कारण शृंखला को एक रूप में देखा। परवर्तीकाल में माया को आदि शक्ति के रूप में माना गया है। श्री रामकृष्ण परमहंस ने भी कहा कि ब्रह्म और शक्ति एक हैं। ब्रह्म प्रत्येक जीव और अजीव में सर्वव्याप्त है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा भी गया है– सर्वम् खलु इदम् ब्रह्म और स्वामी विवेकानंद के लिए वेदांत का पर्याय उपनिषद् हैं। उन्होंने भौतिक विज्ञान का मसीहा न्यूटन और गेलिलियो को माना और आत्म-विज्ञान अथवा अध्यात्म का उपनिषद् के ऋषियों को। उनकी मान्यता थी कि अंततः मानसिक और भौतिक संपूर्ण विश्व एक ही में समाहित होकर रहेगा। भौतिक और आत्मिक (तात्त्विक) दोनों ज्ञान एक ही सत्य की स्थापना करेंगे। अद्वैत अस्तित्व के मूलभूत सिद्धांत एकत्व पर ही आधारित हैं। एक के अतिरिक्त अन्य की कोई सत्ता ही नहीं। वही सत्य है, अकाट्य है, अभेद्य है, अविभाज्य है, चैतन्य है, आनंद स्वरूप है।

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 35



संपूर्ण ऊर्जा चेतना से ही निस्तृत है। वेदांत के अनुसार दिक् ब्रह्म है (खम ब्रह्म-छान्दोग्योपनिषद् 4.10.4) वही ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की लीला स्थली है- प्राण वई सत्यम्। (बृहद् आरण्यक उपनिषद् 2.3.6 ) यही नटराज शिव के निर्माण और विनाश का सतत चलने वाला तांडवनृत्य है। वेदांत के अनुसार ब्रह्माण्डीय ऊर्जा भी, असीम-चेतना द्वारा संचालित है। उपनिषद् इसको सत्यों का सत्य कहता है। चेतना मस्तिष्क में नहीं, सर्वव्याप्त है। सन् 1963 के नोबेल पुरस्कार विजेता ब्रिटिश तंत्रिका वैज्ञानिक (Neurologist) जोहन इक्वलस इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि चेतना एक अतिरिक्त मस्तिष्क है जो जटिल गुप्त संकेत (Complex Code) के माध्यम से अभौतिक मस्तिष्क के रूप में गर्भ विकासकाल में ही भौतिक मस्तिष्क में प्रवेश कर जाता है। बहुत संभव है कि अभौतिक चेतना हमारे शरीर और मस्तिष्क की मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रह सकती हो।

दूसरी ओर महान् न्यूरोलोजिस्ट वाइल्डर पेनफील्ड का कहना है कि यह कल्पना करना कि चेतना मस्तिष्क में है, तंत्रिका विज्ञान से अनभिज्ञता है। नोबेल वैज्ञानिक जॉर्ज वाइल्ड ने पेनफील्ड ही नहीं, कठोपनिषद् के नित्य-स्वर्गता सिद्धांत को भी यह कहकर प्रतिध्वनित किया कि चेतना स्वयं दिक् और काल की सीमाओं के बाहर रहती है– चेतना का स्थान निर्धारित नहीं किया जा सकता।

पूर्व और पश्चिम के इस दार्शनिक विभेद के बाद भी सत्यान्वेषण की सहज-शाश्वत जिज्ञासा शांत करने के प्रयत्नों को ठेस न लगती यदि पाश्चात्य पक्ष दुराग्रह से बचता। परंतु ऐसा हो न सका। भारतीय दर्शन ने अध्यात्मवादी होने के बाद भी भौतिकवाद को हेय और त्याज्य नहीं माना, मत भिन्नता को 'वादे-वादे जायते तत्त्व बोधः' के अंतर्गत सम्मान दिया। ईशावास्य उपनिषद् में अविद्याजनित जगत् के स्वरूप को जानने के महत्त्व को निम्न शब्दों में स्वीकार किया–

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

*- ईशा. 11*

जो विद्या तथा अविद्या के सहित सत्य को जानता है, वह अविद्या द्वारा अर्थात् अविद्या (पदार्थ विज्ञान) के स्वरूप को जानकर, मृत्यु को पार करके विद्या (आत्म विज्ञान) के द्वारा अमरत्व को प्राप्त करता है।

दोनों के सम्यक् महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए ईशोपनिषद् के नौवें मंत्र में कहा गया है :

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायामंरताः ।।

*- ईशा. 9*

**अंततः मानसिक और भौतिक संपूर्ण विश्व एक ही में समाहित होकर रहेगा। भौतिक और आत्मिक (तात्त्विक) दोनों ज्ञान एक ही सत्य की स्थापना करेंगे। अद्वैत अस्तित्व के मूलभूत सिद्धांत एकत्व पर ही आधारित है। एक के अतिरिक्त अन्य की कोई सत्ता ही नहीं है। वही सत्य है, अकाट्य है, अभेद्य है, अविभाज्य है, चैतन्य है, आनंद स्वरूप है।**

**–स्वामी विवेकानंद**

अर्थात् जो लोग (केवल) अविद्या (पदार्थ विज्ञान) की उपासना करते हैं वे गहन अंधकार (अज्ञान) से घिर जाते हैं और जो (केवल) विद्या (आत्म विज्ञान) की ही उपासना करते हैं वे भी उसी प्रकार के अज्ञान में फंस जाते हैं।

परंतु कुछ अपवादों को छोड़कर भौतिकवादी पाश्चात्य ने अध्यात्म को सिरे से नकार कर केवल पदार्थ (matter) की सत्ता को ही सत्य माना। अध्यात्म को पूरी तरह खारिज कर, अवैज्ञानिक घोषित कर दिया।

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 36

परिणामस्वरूप जिज्ञासु मन में उथल-पुथल करने वाले स्वाभाविक प्रश्नों के उत्तर खोजने में बाधा उत्पन्न हुई। मैं क्या हूँ? मेरे चारों ओर यह सब क्या है? इस विश्व का नियामक सत्य क्या है? इत्यादि में मैं और नियामक सत्य के स्थान पर मेरे चारों ओर भासित भौतिक जगत् के अन्वेषण पर ही संपूर्ण प्रयत्न केंद्रित होते चले गए। असत् को ही सत् मान लिया गया।

### भौतिकवादी सेब-सम्मोहन

इसे विडंबना ही कहना पड़ेगा कि इस भटकाव के लिए भी 'सेब' फल ही कारणीभूत बना। अज्ञान और अंधकार की लंबी कालरात्रि के बाद यूरोपवासियों के भाग्य ने जोर मारा। उत्तर मध्य काल में स्वर्ण के लालच

**भौतिकवादी पाश्चात्य ने अध्यात्म को सिरे से नकार कर केवल पदार्थ की सत्ता को ही सत्य माना। अध्यात्म को पूरी तरह खारिज कर दिया, अवैज्ञानिक घोषित कर दिया। परिणामस्वरूप जिज्ञासु मन में उथल-पुथल करने वाले स्वभाविक प्रश्नों के उत्तर खोजने में बाधा उत्पन्न हुई। मैं क्या हूँ? मेरे चारों ओर यह सब क्या है? इस विश्व का नियामक सत्य क्या है? इत्यादि में मैं और नियामक सत्य के स्थान पर मेरे चारों ओर भासित भौतिक जगत् के अन्वेषण पर ही संपूर्ण प्रयत्न केंद्रित होते चले गए। असत् को ही सत् मान लिया गया।**

में वे दुनिया की खोज को निकल पड़े और संयोग से कोलम्बस विशाल अमेरीकी महाद्वीपों तथा वास्को-डी-गामा सोने की चिड़िया भारत देश जा पहुँचा। धोखे और चालाकी के चलते सत्ता हथियाने में सफल रहे, दोनों हाथों से धन संपदा लूटी और अपने देशों को मालामाल कर डाला। भारत से तो ज्ञान संपदा की भी जी भरकर चोरी की। परिणामस्वरूप यूरोप मालामाल हो गया और बौद्धिक दृष्टि से भी सर्वोपरि। उसी परिमाण में हथियाए गए देश दीन-हीन और अल्पज्ञ। आधी दुनिया की भौगोलिक ही नहीं, भौतिक और बौद्धिक संपदा पर यूरोप का कब्जा हो गया। भारत के अंगूठे बराबर देश– इंग्लैंड, पुर्तगाल, फ्रांस, डेनमार्क आदि भाग्य विधाता बन बैठे। साम्राज्यवादी-अधिकारवादी अहं की तुष्टि के लिए औद्योगिकीकरण की दौड़ में नई-नई वैज्ञानिक और तकनीकी खोजों और तरकीबों के जन्म का शुभारंभ काल यही था।

इसी काल की पूर्व संध्या पर 4 जनवरी, 1643 को इंग्लैंड में इस्साक् न्यूटन (Issac Newton) नामक एक ऐसे बालक का जन्म हुआ जिसकी खोजों ने दुनिया भर के वैज्ञानिकों, दार्शनिकों और बुद्धिजीवियों के चिंतन को ही प्रभावित नहीं किया, यूरोपीय औद्योगिक क्रांति का भी सूत्रपात किया।

बाल्यकाल में बगीचे में बैठे न्यूटन के सिर पर आ गिरे 'सेब' ने उसमें सहज जिज्ञासा को जन्म दिया– यह सेब पेड़ से टूट कर जमीन की ओर ही क्यों आया, आकाश की ओर क्यों नहीं चला गया? इसी के उत्तर की खोज में गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत ने जन्म लिया। न्यूटन ने फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा। एक के बाद एक कितने ही वैज्ञानिक सिद्धांतों का जनक बना और मृत्यु पर्यंत (31 मार्च 1727) एक अत्यंत प्रतिष्ठित वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, धनाढ्य व्यक्ति के रूप में उसकी दुंदुभी गूँजती रही।

ग्रहों-नक्षत्रों के चक्कर लगाने, गति के तीन सिद्धांतों, कैलकुलस आदि के सिद्धांत के प्रदाता के रूप में उसकी ख्याति किसी न किसी रूप में आज भी कायम है।

अपनी विनम्र उक्तियों के बाद भी यथा :

1. यदि मैं भविष्य को निहार पाया, तो इसी कारण क्योंकि मैं अपने पूर्व के महान् पूर्वजों के कंधों पर खड़ा था।

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 37



(If I have seen further, it is by standing on the shoulders of giants)

2. मैं एक अबोध बालक की भाँति अपेक्षाकृत कुछेक अधिक चिकने पत्थर और सीपियाँ चुन पाया जबकि सत्य ज्ञान का महासमुद्र मेरे सम्मुख अनखोजा फैला पड़ा था।
(I seem to have been only like a boy.... finding a smoother pebble or a prettier shell than ordinary, whilst the great ocean of truth lay all undiscovered.)

न्यूटन अहंकारी और तुनकमिजाज था। उसके कारण कार्य-कारण संबंध (law of cause and effect) और व्यक्ति-परक के स्थान पर वस्तु-परक (objective instead of subjective) के सिद्धांत दृढ़मूल हुए। परिणाम स्वरूप भारतीय आध्यात्मिक अनुभूतिपरक अवधारणाओं को गंभीर चुनौती मिली, गहरा आधात लगा।

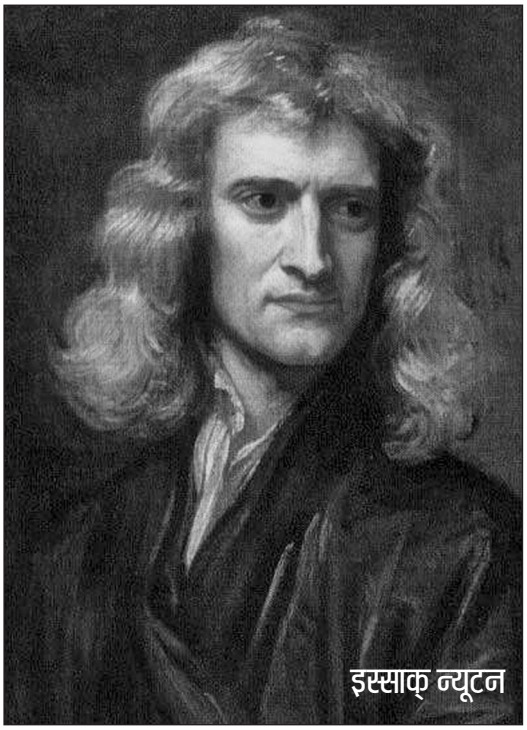
इस्साक् न्यूटन

चेतना के स्थान पर जड़ सत्ता की प्रधानता का डंका, प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक डेकार्टे (31 मार्च 1596 से 11 फरवरी 1650) अपनी प्रसिद्ध उक्ति ''मैं विचार करता हूँ, अतः मैं हूँ'' (I think, threfore I am) द्वारा पहले ही बजा चुका था। डेकार्टे को मस्तिष्क और पदार्थ के द्वैत सिद्धांत (Dualistic Theory of mind and matter) तथा आधुनिक तर्कशास्त्र (Rationalism) के जनक के रूप में कौन नहीं जानता! डेकार्टे शरीर को एक ऐसी मशीन मानता था जो आत्मा से मुक्त स्वचालित होने में सक्षम है। उसकी दृष्टि में परमात्मा वास्तव में एक धोकेबाज दैत्य है या मात्र विक्षिप्त!

19वीं शताब्दी के मध्य के आते-आते 1848 में कम्यूनिस्ट मैनीफेस्टो तथा 1867 में कैपिटल (Capital) के रूप में जर्मन मूल के कार्ल मार्क्स के साथ-साथ फ्रेडेरिक ऐंजिल ने अर्थ का एक भौतिकवादी दर्शन दुनिया के सामने परोस दिया जिसे बाद में कई देशों ने चटखारे ले-ले कर चखा और उसका दुष्परिणाम भोगा। इसे लोगों ने मनभावन नाम दिया वैज्ञानिक तार्किक भौतिकवाद (Dialectical Materialism)। कहने और दिखाने के लिए यह दर्शन श्रम तथा श्रमिक हितकारी था जिसके केंद्र में अर्थ को रखकर आर्थिक वर्ग-संघर्ष के माध्यम से क्रांति द्वारा सर्वहारा की तानाशाही स्थापित कर अंततोगत्वा वर्गविहीन समाज रचना का सलोना स्वप्न संजोया गया था। असल में यह एक अन्य जर्मन दार्शनिक हीगल के (Hegelian Dialectical) परिप्रेक्ष्य मे ही भौतिकवाद को आत्मवादी दर्शन की प्रतिस्पर्धा में स्थापित करने का प्रयत्न था। इनकी मान्यता थी कि निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर पदार्थ का सतत वर्धमान होते जाना एक स्वाभाविक प्राकृतिक प्रक्रिया है। इनके विचार में पदार्थ, विचार से पहले आता है (Priority of matter over mind)।

यही वैज्ञानिक दर्शन है– संसार अन्य कुछ नहीं, पदार्थ है, जो सतत गतिमान है जहाँ प्रत्येक वस्तु एक दूसरे से संबंधित एवं निर्भर है तथा प्राकृतिक नियमों से संचालित है। संसार अंदर नहीं, बाहर बसता है।

रही सही कसर चार्ल्स डार्विन (1809-1882) के जैविक विकासवाद के सिद्धांत ने पूरी कर दी। उसने स्थापित किया कि समस्त जीव-प्रजातियाँ उसके घटक की प्रतियोगिता, जीवेषणा तथा वंशवृद्धि की क्षमता के अनुपात से उत्पन्न और विकसित होती हैं। 1859 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'जीवों की उत्पत्ति' में डार्विन ने स्थापित किया कि समस्त जीवन किसी एक अथवा

**तार्किक भौतिकवाद, जर्मन दार्शनिक हीगल के परिप्रेक्ष्य मे ही भौतिकवाद को आत्मवादी दर्शन की प्रतिस्पर्धा में स्थापित करने का प्रयत्न था। इनकी मान्यता थी कि निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर पदार्थ का सतत वर्धमान होते जाना एक स्वाभाविक प्राकृतिक प्रक्रिया है। इनके विचार में पदार्थ, विचार से पहले आता है। यही वैज्ञानिक दर्शन है-संसार अन्य कुछ नहीं, पदार्थ है, जो सतत गतिमान है जहाँ प्रत्येक वस्तु एक दूसरे से संबंधित एवं निर्भर है तथा प्राकृतिक नियमों से संचालित है। संसार अंदर नहीं, बाहर बसता है।**

अल्प जीव समूह से विकसित हुआ (All life came from one or a few kinds of species)।

भौतिकवाद की ये चुनौतियाँ सीधे-सीधे भारतीय अध्यात्मवाद को थीं। परंतु भारत प्रतिकार-करना तो दूर, तर्कपूर्ण उत्तर देने की स्थिति में भी नहीं था। शताब्दियों से क्रूर धर्मांध मुस्लिम आक्रांताओं से जूझने तथा अपना धर्म, दर्शन, मान, सम्मान, आचार-विचार बचाने में ही खपा जा रहा था। जबकि इधर ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपना खूनी पंजा भारत के वक्षस्थल पर घोप दिया था। धूर्त ईसाई मिशनरियों की लोलुप निगाहें भारत के निरीह-निर्धन जन को धर्मांतरित करने के उद्देश्य से ललचाई आँखों से ताक रहीं थीं। पश्चिमी देशों में नित-नवीन खोज और अन्वेषण की होड़ ने दुनिया को नए-नए आविष्कारों से पाट दिया था।

एक ओर पश्चिम का साम्राज्यवादी विस्तार, परिणाम स्वरूप उन देशों में दुनिया भर से लूटकर लाई गई संपदा जनित धन, वैभव के अंबार और नित नवीन वैज्ञानिक-तकनीकी खोजों का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि पश्चिमात्य मान्यताएँ और दर्शन अकाट्य और अजेय दिखने लगे। भाप, बिजली, तार आदि की खोजों ने मानव जाति को रेल, मोटर आदि के माध्यम से आवागमन और तार-प्रेस आदि संचार माध्यमों की अभूतपूर्व शक्ति और सुविधा ही प्रदान नहीं की, आध्यात्मिक दर्शन की तुलना में भौतिक दर्शन को, दृश्य रूप में ही क्यों न हो, वरीयता का तोहफा भेंट कर दिया।

सन् 1800 में सर हम्फ्री डेवी द्वारा बिजली, 1808 में जार्ज अटवुड़ द्वारा आणविकी, 1877 में ग्राहम बेल द्वारा टेलीफोन, 1885 में गोहलेब द्वारा मोटरकार, 1890 में फ्रोज वारेन द्वारा फोटोग्राफी, 1895 में कानार्ड रान्टजन द्वारा एक्सरे,1895 में ही राबर्ट पाल आदि द्वारा सिनेमा की खोजों ने पदार्थ की प्रभु-सत्ता मानों सदा-सर्वदा के लिए स्थापित कर दी।

सामान्य जन अपने अल्पकालिक सुख के लोभ में भौतिकी नामक सुंदरी के मोहजाल में फंसकर उसकी अभिन्न तुच्छ सहेली को अनदेखा कर देता है। जहाँ एक ओर भौतिकी उसे शारीरिक सुख और विलासिता के साधन उपलब्ध कराती है, वहीं दूसरी ओर उसकी एक अन्य सहेली भाँति-भाँति की शारीरिक व्याधियों से ग्रसित कर देती है तथा मानसिक रोगों में जकड़ लेती है। दिन का चैन और रात की नींद हराम कर देती है। यही हाल भौतिक उन्नति ने हमारे विश्व का कर

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 39



दिया है। शारीरिक धरातल पर हमें अनेकानेक रोगों ने घेर लिया। उनके निवारण के लिए नई-नई औषधियों की खोज की। परंतु रोग उत्तरोत्तर बढ़ते चले गए।

मानसिक रूप से स्पर्धा और ईर्ष्या ने वैश्विक कलह और कटुता को चरम पर ला दिया; युद्धों की भट्टी में धकेल दिया जिन्हें विजित करने के लिए घोर-घातक हथियारों की खोज की होड़ लग गई। अणु से परमाणु युग में पहुँच गए। न्यूक्लीयर की ओर अग्रसर हो गए। राष्ट्रीय से अंतर्राष्ट्रीय और अब अंतरिक्ष पर हमारी कुदृष्टि है। वातावरण को बर्बाद करने के बाद पर्यावरण ग्रसने की बारी है। संक्षेप में मानव जाति ही नहीं संपूर्ण सृष्टि को निगलने की क्षमता भौतिकवाद ने प्राप्त कर ली है। जंगल और जीव दम तोड़ते नजर आते हैं। ध्रुव पिघल रहे हैं। समुद्र जल का तापमान तथा जलस्तर बढ़ रहा है। जलचर जीवन के लिए फड़फड़ा रहे हैं, कितने ही द्वीप अगले 50 साल में समुद्र जलस्तर बढ़ने के कारण सागर-महासागर में समा जाएँगे। एक ऐसा भी समय आ सकता है जब समस्त जल भाप बनकर उड़ जाए, पहले से ही विषाक्त वायु से दम तोड़ता, जलहीन प्राणी जीवन के आश्रय के लिए अंतरिक्ष की ओर दौड़े, परंतु तब तक वहाँ भी कोई अन्य दैत्य भौतिकी से पाला पड़ जाए। मानव मन को आशंकाओं ने घेर लिया। लगने लगा कि सृष्टि विषयक पश्चिमी अवधारणा क्योंकि वैज्ञानिक रूप में सिद्ध होती नजर आ रही थी, अतः वही सही है, अर्थात्–

(क) सृष्टि की कहानी लंबवत् है– एक बिंदु से प्रारंभ हुई, एक बिंदु पर ही जाकर समाप्त हो जाएगी। कहीं आदि है, अंत भी होगा ही।

(ख) जगत् में जीव और जंगम सभी, मात्र पदार्थ हैं जिन्हें मनुष्य द्वारा जोड़-तोड़ से घड़ा जा सकता है, इच्छानुसार घटाया-बढ़ाया जा सकता है।

(ग) मनुष्य सर्वोपरि है, प्रकृति तथा प्राकृतिक साधनों का मनचाहे रूप में दोहन ही नहीं शोषण करना भी उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। वही सब दृश्य-अदृश्य जगत् का नियन्ता और नियामक है। उसके पहले और परे कुछ नहीं है।

इसी की स्वाभाविक परिणति के रूप में भारतीय आस्थाएँ और मान्यताएँ प्रश्नों के घेरे में निरीह होकर लाचार दिखाई देने लगीं। जैसे–

(क) सृष्टि उत्पत्ति विषयक हमारी चक्रीय अवधारणा अनादि और अनंत की है। शून्य अभाव का ही नहीं, प्रभाव का भी प्रतीक है। यह प्रभाव जितना धनात्मक है, उतना ही ऋणात्मक भी। दोनों ही किसी अदृश्य बल से लबालबा भरे हैं। दोनों की अपनी शक्ति है जो सृष्टि को सातत्य प्रदान करती है। वास्तव में यही शून्य का भाव और स्वभाव है।

**यह भौतिक दर्शन का ही परिणाम है कि सामान्य जन अपने अल्पकालिक सुख के लोभ में भौतिकी नामक सुंदरी के मोहजाल में फंसकर उसकी अभिन्न तुच्छ सहेली को अनदेखा कर देता है। जहाँ एक ओर भौतिकी उसे शारीरिक सुख और विलासिता के साधन उपलब्ध कराती है, वहीं दूसरी ओर उसकी एक अन्य सहेली भाँति-भाँति की शारीरिक व्याधियों से ग्रसित कर देती है तथा मानसिक रोगों में जकड़ लेती है। दिन का चैन और रात की नींद हराम कर देती है। यही हाल भौतिक उन्नति ने हमारे विश्व का कर दिया है।**

(ख) पदार्थ निष्प्राण, निर्जीव दिखते भले ही हों, उनका अपना निजत्व है। उनकी अपनी चेतना शक्ति है, आत्मा है। परमात्मा का अंश होने के कारण जीव ही नहीं, जड़ भी सचेतन सत्ता का अंश है। मात्र गणितीय जोड़-तोड़ नहीं है।

(ग) सृष्टि के केंद्र में नियंता के रूप में मनुष्य

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 40

नहीं, परम सत्य रूपी कोई अदृश्य, अज्ञेय, अजेय सनातन सत्ता क्रियाशील है।

(घ) प्रकृति और पुरुष, आत्म और परमात्म, जड़ और चेतन भिन्न-भिन्न दिखने पर भी अभिन्न हैं। द्वैत दिखता भले ही हो, वास्तव में सब कुछ अद्वैत है। अन्य कुछ नहीं है। कोई भी वस्तु एक साथ सत्य और असत्य दोनों नहीं हो सकती।

(ङ) सत्य केवल एक है, अविभाज्य है, चेतन है। सतत आनंद का पर्याय है। सच्चिदानंद है। अनित्य नहीं, नित्य है। अजर-अमर है। अध्यात्म की समाधि अवस्था में कर्ता, क्रिया और कर्म एक हो जाते हैं। सब भेद तिरोहित हो जाते हैं। शून्य की पूर्णावस्था और परिपूर्ण

**भारतीय मंत्रवेत्ताओं ने बहुत प्रारंभ में यह ज्ञान प्राप्त कर हृदयंगम् कर लिया था कि प्रत्येक विचार और वस्तु में प्रभाव भी होता है, अभाव भी होता है। हर वस्तु का स्वयं का अपना स्वभाव होता है जिसे ऋषि ने धर्म की संज्ञा दी –जैसे अग्नि का धर्म है उष्णता और जल का शीतलता। अनुभाव (संकल्प) उसे परिपूर्णता प्रदान करता है। इसी सिद्धांत के अनुसार शून्य प्रभाव का प्रतीक है, अभाव का भी है। परंतु उसका मूल स्वभाव समभाव का है।**

की शून्यावस्था, खालीपन नहीं, तृप्तावस्था। अदृश्य और अनिर्वचनीय। द्रष्टा, दृष्टि और दृश्य की भिन्नता आभास मात्र है। वास्तव में अद्वैत ही अद्वैत है।

## शून्य की सत्ता

भारतीय ऋषि-मुनियों ने योग की सर्वोच्चावस्था अर्थात् समाधि अवस्था में ऋतम्भरा प्रज्ञा के आलोक में अपने-अपने अंतस में स्वानुभूति से यह सत्यान्वेषण किया था।

इस शून्य की अहमन्यता का आभास भी ऐसे ही किन्ही क्षणों में सुदूर अतीत में हमारे किसी प्रज्ञा-चक्षु को हुआ। कब और किसने, हम नहीं जानते। परंतु कोई ब्रह्मवेत्ता ही था, जिसे शून्य के विचार और आकार (Concept and form of Shunya) की अनुभूति हुई, जिसमें उसका अभाव ही नहीं, प्रभाव भी उनके दृष्टिपथ में आ समा गया। असल में भारतीय मंत्रवेत्ताओं ने बहुत प्रारंभ में यह ज्ञान प्राप्त कर हृदयंगम् कर लिया था कि प्रत्येक विचार और वस्तु में प्रभाव भी होता है, अभाव भी होता है। हर वस्तु का स्वयं का अपना स्वभाव होता है जिसे ऋषि ने धर्म की संज्ञा दी – जैसे अग्नि का धर्म है उष्णता और जल का शीतलता। अनुभाव (संकल्प) उसे परिपूर्णता प्रदान करता है। इसी सिद्धांत के अनुसार शून्य प्रभाव का प्रतीक है, अभाव का भी है। परंतु उसका मूल स्वभाव समभाव का है। धन (+) तथा ऋण (-) अन्ततोगत्वा समानावस्था को ही प्राप्त होते हैं। यही नित्य है। शेष सब कुछ अनित्य है। यही अनुभाव है अर्थात् परमशक्ति की संकल्पशक्ति है।

इसी कारण वेदांत दर्शन में भी हमारे शास्त्रों में ब्रह्माण्ड कहा गया है, अर्थात् अंडाकार या कहें शून्याकार जिसमें रिक्तत्ता नहीं, आत्म-तत्त्व की अनन्त अवस्थिति है।

शून्य में शून्य, 'शून्य' में 'शून्य' की अनादि और अनन्त सत्य की सचेतन शृंखला विद्यमान हैं। तभी तो 'ईशावास्योपनिषद्' का उद्घोष है–

ॐ पूर्णमदः, पूर्णमिदं, पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य, पूर्णमदाय, पूर्णमेवावशिष्यते।।

*- ईशा.*

(वह सच्चिदानंद घन परमब्रह्म पुरुषोत्तम सब प्रकार से सदा-सर्वज्ञ परिपूर्ण है। यह जगत् भी उस परब्रह्म से ही पूर्ण है, क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्म की पूर्णता से जगत् पूर्ण है, इसलिए वह भी परिपूर्ण है। उस पूर्ण ब्रह्म में से

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 41



पूर्ण को निकाल लेने पर भी वह पूर्ण ही बचा रहता है।)

इस महामहिम शून्य की शक्ति का ही प्रताप है कि किसी भी संख्या के पूर्व खंभ ठोक-कर खड़ा होने भर की देरी है कि उस संख्या का बल दस गुणा कम हो जाता है और किसी भी संख्या के पश्चात् शून्य के खड़ा हो जाने पर उस संख्या का बल-दस गुणा बढ़ जाता है। कमाल तो तब होता है जब जैसे-जैसे शून्य लगाते जाते हैं यह कमी अथवा वृद्धि दस-दस गुणा होती चली जाती है– अनंत तक और यदि शून्य स्वयं शून्य से पूर्व अथवा बाद में लगाते हैं तो उसकी शक्ति यथावत् अर्थात् शून्य ही बनी रहती है। शून्य या कहें स्थितप्रज्ञ, अनादि और अनंत अर्थात् सत्-चित्त्-आनंद-सच्चिदानंद।

ईसवी सन् 498 के लगभग भारतीय गणित शास्त्री एवं खगोलवेत्ता आर्यभट्ट ने अपनी आर्यभट्टीय के संख्या स्थान निरूपणांक में कहा है –

एकं च, दशं च, शतं च,
सहस्मतु अयुत नियुते तथा प्रयुतम।
कोटिय बुदिं च,
वृन्द स्थानांत्स्थानं दशगुणाशां स्यात।।

अर्थात् एक, दश, शत्, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, कोटि, अबुदि तथा वृंद में प्रत्येक पिछले स्थान वाले से अगले स्थान वाला दस गुणा है।

प्राचीन वक्षाली पाण्डुलिपि में, जो निश्चित रूप से आर्यभट्ट से प्राचीन है, शून्य का प्रयोग किया गया है। शून्य तथा संख्या के दशमलव सिद्धांत का धूमिल-सा अस्पष्ट प्रयोग ब्रह्मगुप्त रचित ब्रह्मस्फुट सिद्धांत में भी पाया गया है जो सातवीं शती की रचना मानी गई है। बाद में यही सिद्धांत काम्बोज (कम्बोडिया) पहुँचा, जहाँ से चीन तथा फिर अरब के मुस्लिम देशों से होता हुआ बारहवीं शताब्दी में यूरोप पहुँचा। अरब में शून्य सिफर और लेटिन, इटैलियन, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि यूरोपीय भाषाओं में थोड़े बहुत अंतर से जीरो कहलाया।

वैसे सर्वप्रथम पाँचवी शताब्दी के मध्य में दिगम्बर जैन मुनि सर्वनन्दी महाराज द्वारा प्राकृत भाषा में रचित 'लोक विभाग' नामक ग्रंथ में दशमलव संख्या पद्धति का उल्लेख मिलता है।

भारतीय दर्शन अनुसंधान परिषद् (Indian council of Philosophical Research -ICPR) के अध्यक्ष प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री प्रोफेसर सिद्धेश्वर भट्ट ने आजाद भवन नई दिल्ली में 9-10 दिसंबर, 2016 के क्वांटम और शून्य सिद्धांत (Quantum Reality and Theory of Shunya) विषय पर डॉ. लोकेशचन्द्र की अध्यक्षता में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के उद्घाटन सत्र में

**प्राचीन वक्षाली पाण्डुलिपि में, जो निश्चित रूप से आर्यभट्ट से प्राचीन है, शून्य का प्रयोग किया गया है। शून्य तथा संख्या के दशमलव सिद्धांत का धूमिल-सा अस्पष्ट प्रयोग ब्रह्मगुप्त रचित ब्रह्मस्फुट सिद्धांत में भी पाया गया है जो सातवीं शती की रचना मानी गई है। बाद में यही सिद्धांत काम्बोज (कम्बोडिया) पहुँचा, जहाँ से चीन तथा फिर अरब के मुस्लिम देशों से होता हुआ बारहवीं शताब्दी में यूरोप पहुँचा। अरब में शून्य सिफर और लेटिन, इटैलियन, फ्रेंच, अंग्रेजी भाषाओं में थोड़े बहुत अंतर से जीरो कहलाया।**

अपने प्रास्ताविक उद्बोधन में शून्य को परिभाषित करते हुए दो टूक शब्दों में कहा था कि –

''शून्य का आध्यात्मिक निहितार्थ सत्य की सम्पूर्णता है। यह परिपूर्ण अनंत, असीम का संवाहक है। इसका प्रत्येक कोष अथवा खंड ब्रह्माण्ड के अंतर्गत स्वयं में अखंड अथवा पिंड है। यह सर्वांग मंडल है और ब्रह्माण्ड में मंडल के अंदर मंडलों की अखंड शृंखलाएँ हैं जो केंद्रीभूत सर्वांग मंडलों का चित्र प्रस्तुत करते हैं। अंतिम सत्य सर्व-समावेशी पूर्ण मंडल है। ईशोपनिषद्

का शांति मंत्र इसी अनुभूत दर्शन का प्रस्तुतीकरण है।''

(Metaphysical connotation of Shunya stands for the totality of Reality.... It is equated with Purna, means completeness, infinitude, bound lessness. It's each part - Kosh or Khand - is also a whole (Pind or Akhand) with in the whole Brahmand. It is represented as a Supreme Circle and in the Cosmos there are circles within circles presenting a picture of concentric wholes. The ultimate Reality is full circle, an over-arching circle. The invocation of Ishopnishad puts forth this intutive vision).

**शून्य का आध्यात्मिक निहितार्थ सत्य की सम्पूर्णता है। यह परिपूर्ण अनंत, असीम का संवाहक है। इसका प्रत्येक कोष अथवा खंड ब्रह्माण्ड के अंतर्गत स्वयं में अखंड अथवा पिंड है। यह सर्वांग मंडल है और ब्रह्माण्ड में मंडल के अंदर मंडलों की अखंड शृंखलाएँ हैं जो केंद्रीभूत सर्वांग मंडलों का चित्र प्रस्तुत करते हैं। अंतिम सत्य सर्व-समावेशी पूर्ण मंडल है। ईशोपनिषद् का शांति मंत्र इसी अनुभूत दर्शन का प्रस्तुतीकरण है।**

## हताशा का हिंडोला

परंतु पश्चिम की वैज्ञानिक दुंदुभी के सामने भारतीय अवधारणा लाचार सी नजर आती थी। हताशा और निराशा घर करने लगी थी। स्वयं अपने पर ही हमारा विश्वास डगमगाने लगा था। ऐसा नहीं कि हमारी कालातीत स्वयं-सिद्ध, वेद-सम्मत थाती के प्रमाण हमारे पास नहीं थे, परंतु जिस प्रकार के प्रमाण पश्चिम का तार्किक मन माँगता था, वह हम प्रस्तुत करने में असमर्थ थे क्योंकि भारतीय वैदिक ज्ञान, शास्त्र एवं अनुमान प्रमाण के माध्यम से ही साक्षात् स्वयं प्रमाण के गंतव्य पर पहुँचता है। उसे ग्रहण कर पाने की क्षमता एक दीर्घ प्रक्रिया जनित आत्मानुभूति के रूप में 'गूँगे के गुड़' के समान है। वह मशीनी हो ही नहीं सकती। एक का अनुभूत शाश्वत सत्य, अनेक में विभाजित नहीं किया जा सकता। सत्य एक होने के पश्चात् भी व्यक्ति अपनी-अपनी क्षमता के अनुपात में ही सत्यान्वेषण कर सकता है। इसी कारण अंतिम और अविभाज्य सत्य का कोई-कोई विरला अवतारी पुरुष ही साक्षात्कार कर पाता है। तभी तो व्यक्ति ससीम है, परंतु उसमें असीम की संभावनाएँ सदैव विद्यमान रहती हैं। यह हिंदू मान्यता है।

वैदिक ज्ञान परंपरा सूत्र-शैली में प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त होती रही है। उसमें भी एक ही शब्द अथवा प्रतीक के संदर्भ, संयोजन एवं समीकरण भेद से अर्थांतर हो जाना कोई अनहोनी घटना नहीं है। इसका दुरुपयोग विरोधियों ने मनमाने ढ़ंग से हिंदू परंपरा की गलत व्याख्या करके किया है जिसका प्रतिकार भी हम लंबे संघर्ष काल के कारण नहीं कर पाए। हमारी स्थिति प्रायः उस श्रेष्ठी की रही है जिसके पास उसकी अपनी अमूल्य निधियों से भरी तिजोरी तो है परंतु चाबी कहीं गुम हो गयी है। घोर लाचारी की अवस्था में है।

पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के सामने वेदांतिक सत्य की संभावित पराजय के इसी संधि काल में, जिसकी चर्चा हमने लेख के प्रारंभ में की है स्वामी विवेकानंद तथा उनके गंभीर प्रयत्नों के परिणामस्वरूप भारतीय-दर्शन आज हारती बाजी को पुनः विजय के कगार पर लाने में सफल हुआ है।

## आशा की किरण

विधि का विधान ही कहना पड़ेगा कि आत्मविस्मृति और आत्मगलानि भरी एक लंबी काल-रात्रि के बाद अचानक आशा की एक किरण फूटी। वह भी भारत में नही, पश्चिम में ही। स्वामी विवेकानंद के आप्त वचनों तथा कुछ वैज्ञानिकों की प्रयोगधर्मिता और सत्यान्वेषण के प्रति समर्पित संकल्प भाव से किए गए वैज्ञानिक प्रयोगों के परिणामों की घोषणा ने बीसवीं सदी के आते-आते दुनिया के वैज्ञानिकों को झकझोर डाला।

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 43



निःसंदेह उन वैज्ञानिकों में प्रमुखतम नाम 1918 के नोबेल पुरस्कार विजेता तथा आधुनिक क्वांटम फिजिक्स के जनक मैक्स प्लैंक का है। उनकी एक घोषणा ने विज्ञान जगत् में तहलका मचा दिया–

''मैं चेतना को आधारभूत मानता हूँ। पदार्थ को चेतना का उत्पाद समझता हूँ। हम चेतना मुक्त नहीं हो सकते। जिस किसी भी चीज की हम चर्चा करते हैं, जिस किसी भी पदार्थ के होने की हम सोचते हैं, वही चेतना आधारित मिलती है।''

(I regard consciousness as foundational. I regard matter as derivative from consciousness. We cannot get behind consciousness. Every thing that we talk about, everything that we regard as existing postulates consciousness.)

बाद में इसी विचार को 1963 के नोबेल पुरस्कार विजेता भौतिक शास्त्री तथा गणितज्ञ ऐग्ने विग्न ने यह कहकर पुष्ट कर दिया कि ''क्वांटम मिकेनिक्स के सिद्धांतों को चेतना के संदर्भ के अभाव में विधिवत स्थापित करना असंभव था।''

(It was not possible to formulate the laws of Quantum Mechanics in a fully consistent way without reference to consciousness)

दूसरी ओर मॉलीक्यूलर जीव-विज्ञान, बायोकेमिस्ट्री, जेनेटिक्स और सूचना सिद्धांत (Information Theory) के क्षेत्र में हो रही बहुविध खोजें डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत के विरुद्ध गंभीर चुनौती बन कर खड़ी हो गईं !

## क्या है क्वांटम का तिलस्मी संसार

डीमोक्रीटस नामक वैज्ञानिक का विचार था कि परमाणु (Atom), पदार्थ निर्माण की प्रक्रिया में अंतिम अथवा मूल पिंड (Block) है। परंतु अंततः परमाणु का भी विखंडन कर दिया गया और नील्स बोहर ने प्रस्थापित किया कि प्रोटोंस और न्यूट्रोंस के द्वारा बनाए गए नाभिक (Nucleus) के चारों ओर इलेक्ट्रॉन चक्कर

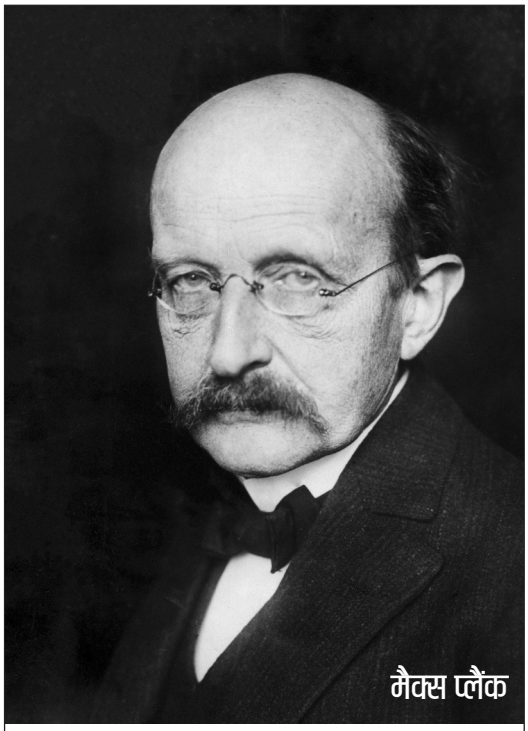

मैक्स प्लैंक

**मैं चेतना को आधारभूत मानता हूँ। पदार्थ को चेतना का उत्पाद समझता हूँ। हम चेतना मुक्त नहीं हो सकते। जिस किसी भी चीज की हम चर्चा करते हैं, जिस किसी भी पदार्थ के होने की हम सोचते हैं, वही चेतना आधारित मिलती है। –मैक्स प्लैंक**

लगा रहे हैं। जिनको स्थिर माना जा रहा था, पता चला कि उनका भी अपकर्षण होता है और उनका आधा जीवन काल भी $10^{32}$ वर्ष है।

महान् वैज्ञानिक आइंसटीन ने 1914 में अपने फोटो इलेक्ट्रॉन अनुसंधान द्वारा सिद्ध कर दिखाया कि प्रकाश तरंगें पार्टिकल्स की तरह आचरण करती हैं। 1924 में एक दूसरे वैज्ञानिक लुईस डें ब्रोगल ने सिद्ध कर दिया कि प्रोटोन या फोटोन ही नहीं, तमाम पार्टिकल्स ऐसा ही व्यवहार करते हैं। 1925 में स्वरोंडीगर ने सिद्ध किया कि इलेक्ट्रॉन तो स्थिर (स्टेंडिंग) तरंग हैं।

मैक्सबोर्न ने इलेक्ट्रॉन को वास्तविक ही मानने से इंकार कर कहा कि वे तो संभावन-तरंग (Probability Waves) हैं जो पूर्णतया अमूर्त और निराकार हैं, मात्र गणितीय (mathematical) सोच हैं। अन्ततः नाभिक (Nucleus) को भी विभाजित करने में सफलता मिल गई जिसने अनेक उप-आणविक पार्टिकल्स (Sub-atomic particles) को सिद्ध कर दिखाया और घोषित किया कि प्रत्येक उप-आणविक अंतरक्रिया मूल पार्टिकल्स का विच्छेदन करती है और नयों का निर्माण।

महान् भारतीय वैज्ञानिक सत्येंद्र नाथ बोस ने प्लैंक के विकिरण नियम को संभालने के लिए सन् 1924 में एक सर्वथा नवीन विधि प्रस्तावित की। उन्होंने प्रकाश की कल्पना द्रव्यमान-रहित कणों के एक गैस (जिसे अब फोटोन गैस कहते हैं) के रूप में की। बोस ने यह प्रदर्शित करने में सफलता प्राप्त की कि गैस के कण बोल्ट समान सांख्यिकी के चिरसम्मत नियमों का पालन न कर अपनी अविभेद्य प्रकृति के कारण एक सर्वथा भिन्न सांख्यिकी के अनुरूप व्यवहार करते हैं।

बोस के इस सैद्धांतिक तर्क को फोटोन से भिन्न कणों पर लगाकर आइंस्टीन ने यह स्थापित कर दिया कि वे बोस द्वारा विकसित सांख्यिकी का ही पालन करते हैं। इसी कारण इस सांख्यिकी का नामकरण बोस-आइंस्टीन सांख्यिकी हो गया।

न्यूक्लीयर विखंडन के बाद अब तक 250 के लगभग पार्टिकल्स की सूची बन चुकी है, जिनमें से कुछ तो मात्र कुछ सेकेंड ही जीवित रह पाते हैं। कुछ उपखंड तो क्षण के $10^{23}$ हिस्से तक ही जिंदा रहते हैं। सबसे कम जिंदा रहने वाले पार्टिकल्स को रिजोनेन्स (Resonance) नाम दिया गया है। यहाँ तक है कि कुछ वैज्ञानिक इसे पार्टिकल मानने के बाद भी पदार्थ (matter) नहीं मानते। प्रो. काप्रा की मान्यता है कि यह सिर्फ एक घटना है, इयत्ता मात्र है जिसे प्रत्येक व्यक्ति

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 45



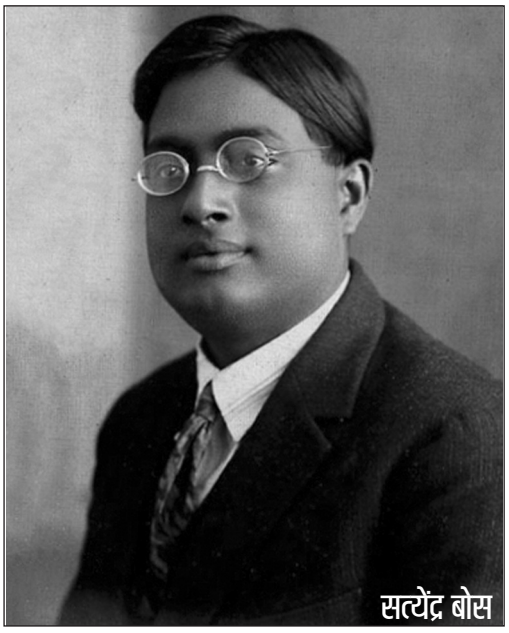
सत्येंद्र बोस

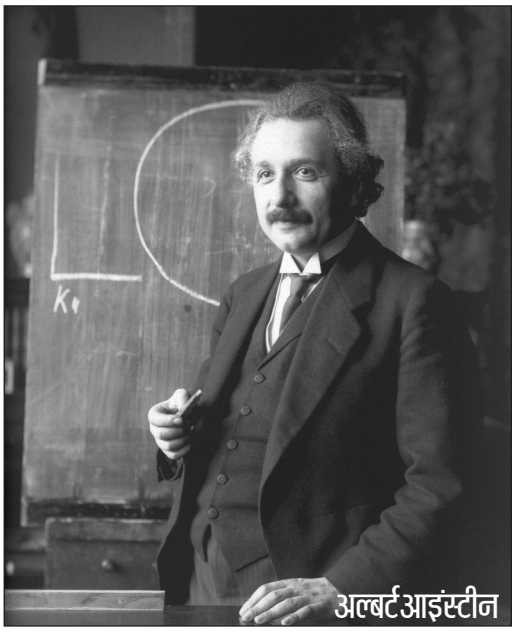
अल्बर्ट आइंस्टीन

(individual) अपनी-अपनी दृष्टि और भावना के अनुरूप भिन्न-भिन्न रूपों में देखता है। व्यक्ति के साथ इयत्ता में बदलाव की संभावना को नकारा नहीं जा सकता। इतना ही नहीं, एक ही व्यक्ति अलग-अलग काल और परिस्थिति में उसी इयत्ता को भिन्न-भिन्न रूप में पा सकता है, अथवा उसका आकलन भिन्न रूप में करने को बाध्य हो सकता है– 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।'

निष्कर्ष तो यहाँ तक भी निकाला जाता है कि यहाँ पहुँचकर भौतिक जगत् निःशेष हो जाता है, आध्यात्मिक अथवा अभौतिक ही शेष रह जाता है।

एक अनिश्चय की स्थिति पैदा हो गई है जिससे अनिश्चितता का सिद्धांत (Uncertainty Principle) उद्भूत हुआ, जो सिद्ध करता है कि सृष्टि में दिख रहा रिक्त स्थान (empty space) खाली नहीं, पार्टिकल्स और ऐन्टी पार्टिकल्स से लबालब है, जिनका आपसी टकराव अतीव ऊर्जा उत्पन्न करता है।

अनिश्चिय के सिद्धांत ने क्वांटम पूर्व के शास्त्रीय भौतिक विज्ञान के दो स्तंभों– कार्य-कारण तथा वस्तुगत– को धराशायी कर दिया है। ब्रह्माण्ड में विरल स्थितियों में कार्य-कारण (Cause and effect) सिद्धांत का स्थान निष्काम-कर्मयोग और वस्तुगत (objective) का आत्मगत (Subjective) भी ले सकता है, जिसे सिरे से खारिज नहीं किया जा सकता।

इसने हमें एक अन्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष के मुहाने पर भी ला खड़ा किया है। वह है कि क्वांटम संसार में वैज्ञानिक का प्रेक्षण कर्म (दृष्टिपात) अंतिम निष्कर्ष में परिवर्तन कर देता है। अर्थात् परमाणु की वास्तविकता वस्तुगत नहीं अपितु वैज्ञानिक के आत्मगत तत्त्व के साथ जुड़ गई है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि अनिश्चितता के सिद्धांत ने वेदांत दर्शन के दोनों सिद्धांतों की पुष्टि की है–

1. बाह्य वास्तविकता का संसार माया अथवा अनिश्चय पर आधारित है, जहाँ कार्य-कारण सिद्धांत पूर्ण रूप से लागू नहीं होता।

2. वह अंतरंग चेतना ही है जो बाह्य जगत् का

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 46

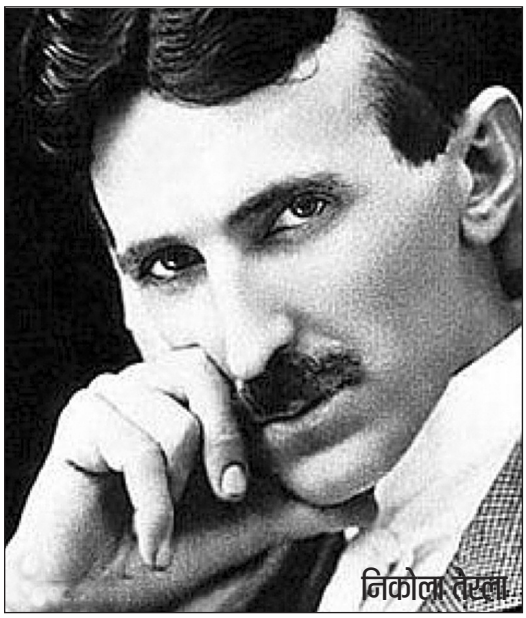


**सिद्ध वैज्ञानिक जिनकी खोजो ने वैदांतिक अवधारणाओं की पुष्टि की।**

स्वरूप और प्रकृति निर्धारित करती है।

इरविन स्वरोंडीगर की वेव इक्वेशन (Wave equation) ने इसकी भलीभाँति पुष्टि यह कह कर की है कि हम एक पार्टिकल के एक बिंदु तक के व्यवहार के संबंध में भविष्यवाणी कर सकते हैं परंतु फिर वे दो, आठ, सोलह और फिर अंतहीन संभावनाओं में बंट जाते हैं। वेदांत में इसे दृष्टि-सृष्टिवाद कहा गया है।

ईसवी सन्1901 में श्री जगदीश चंद्र बसु ने 329 प्रयोगों के माध्यम से लंदन में यह सिद्ध कर दिखाया था कि तमाम जीवों-अजीवों में जीवन है और चेतना धड़कती है। लंदन के टाइम्स ने लिखा था 'इस मेघावी पूर्वी (बोस) ने विज्ञान को जंगली उबड़-खाबड़ प्रयोगवाद की सीमा से बाहर निकालकर खड़ा कर दिया है और आध्यात्मिक समन्वय के संसार में ले आया है।'

**न्यूटोनियन और संस्थापित विज्ञान, जो पदार्थ (Matter) और मानस (Mind) से शुरू हुआ था, आज परम पावन पृष्ठभूमि से सर्वव्याप्त चेतना (आत्मा) को मानने के लिए मजबूर हो गया है। इस विश्व के परे, जहाँ द्रव्य और मानस सब एक हो जाते हैं, विज्ञान के नए प्रतिमान आध्यात्मिक प्रतिमान हैं, भौतिक नहीं।**
**–केन विलवेट**

केन विलवेट ने अपनी पुस्तक The Holographic Paradigm में लिखा-न्यूटोनियन और संस्थापित विज्ञान, जो पदार्थ (Matter) और मानस (Mind) से शुरू हुआ था, आज परम पावन पृष्ठभूमि से सर्वव्याप्त चेतना (आत्मा) को मानने के लिए मजबूर हो गया है। इस विश्व के परे, जहाँ द्रव्य और मानस सब एक हो जाते हैं, विज्ञान के नए प्रतिमान आध्यात्मिक प्रतिमान हैं, भौतिक नहीं।

### चेतन-महर्षि काप्रा

फ्रित्जाफ काप्रा नामक महान् भौतिक शास्त्री और उनकी प्रसिद्ध पुस्तक द ताओ ऑफ फीजिक्स (The Tao of Physics) की चर्चा किए बिना क्वांटम

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 47



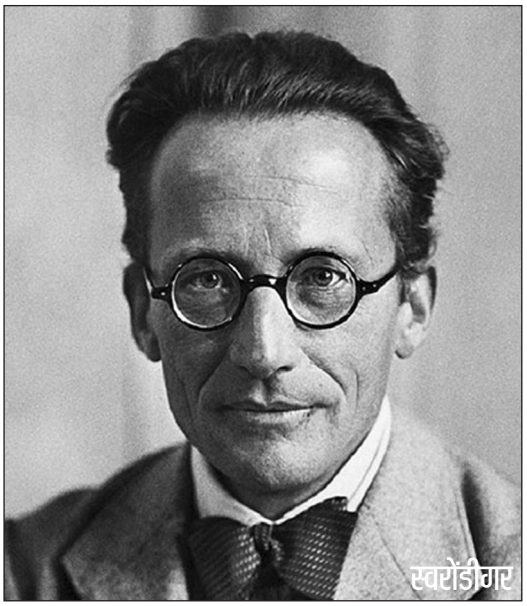
स्वरोंडीगर

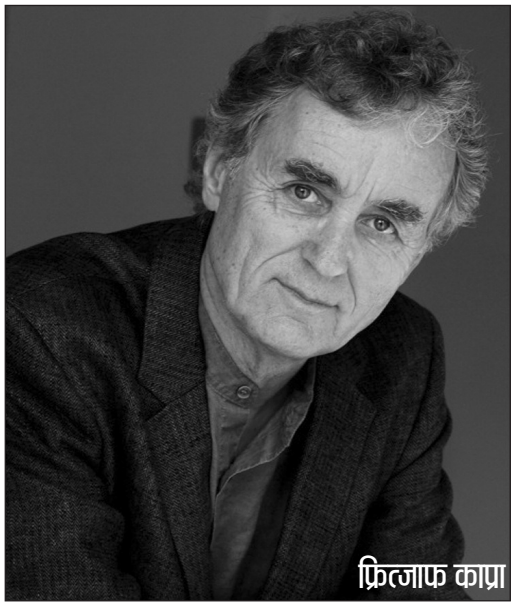
फ्रित्जाफ काप्रा

भौतिकी के विचार की चर्चा अधूरी ही रहेगी। काप्रा ने क्वांटम-भौतिकी-उपलब्धियों के समानांतर चेतना विषयक भारतीय अद्वैत चिंतन को पौर्वात्य चिंतन कहा है और उसमें हिंदू , बौद्ध, चीनी, जापानी को गिना है, जो वास्तव में वेदांत चिंतन का ही विस्तार है।

आइंस्टीन अपनी यह उक्ति कि संसार की रचना करते समय ईश्वर जुए की चौपड़ नहीं खेल रहा था (God was not Playing Dice) तथा भौतिकी के एक एकीकृत सिद्धांत (Unified Theory) खोजने की कामना अपूर्ण छोड़कर ही संसार से विदा हो गया। और यह कामना कभी पूरी होने वाली भी नहीं है। संसार एक ही कोड़े (सिद्धांत) से कभी नहीं हंकने वाला है। जितना-जितना आगे बढ़ते जाएँगे भौतिक जगत् के परे विराजमान सत्य उतना ही अधिक रहस्यवादी तरीके से हमें चिढ़ाता हुआ उदित होता जाएगा।

फ्रित्जाफ काप्रा अमेरिका के कैलीफोर्निया राज्य के निवासी हैं। वियना विश्वविद्यालय से 1966 में सैद्धांतिक भौतिकी (Theoretical physics) में डॉक्टरेट की उपाधि के पश्चात् पेरिस, कैलेफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले लेबोरेटरी आदि प्रमुख संस्थानों में पार्टिकल भौतिकी के क्षेत्र में अनुसंधान में रत रहे हैं तथा कैलीफोर्निया और सेनफ्रांसिसको राज्य विश्वविद्यालयों में अध्यापन कर चुके हैं।

'द ताओ ऑफ फीजिक्स' (The Tao of Physics) जैसी प्रसिद्ध पुस्तक के इस लेखक का कार्य एक ऐसे आधुनिक ऋषि, ज्ञानी-विज्ञानी का है जिसने वेद और विज्ञान के गड़मड़ाए समीकरण को पुनः प्रस्थापित ही नहीं, पुष्ट किया है। उनके लेखन में शुद्ध वैज्ञानिक तार्किकता के साथ-साथ साहित्यिक औपन्यासिकता का पुट पाठक को सम्मोहित करने वाला है।

**'द ताओ ऑफ फीजिक्स' जैसी प्रसिद्ध पुस्तक के लेखक फ्रित्जाफ काप्रा का कार्य एक ऐसे आधुनिक ऋषि, ज्ञानी-विज्ञानी का है जिसने वेद और विज्ञान के गड़मड़ाए समीकरण को पुनः प्रस्थापित ही नहीं, पुष्ट किया है। उनके लेखन में शुद्ध वैज्ञानिक तार्किकता के साथ-साथ साहित्यिक औपन्यासिकता का पुट पाठक को सम्मोहित करने वाला है।**

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 48

काप्रा को पार्टिकल भौतिकी के अनुसंधानकर्ता के रूप में पदार्थ और सत्य संबंधी पौर्वात्य दर्शन पहले से ही आकर्षित करता रहा था। इस्साक् न्यूटन ने ब्रह्माण्ड की ऐसे मशीनी उपकरण के रूप में अवधारणा की जिसमें जो भी कुछ दिखाई देता है वह गतिमान द्रव्यों की एक ऐसी युति है जिसकी रचना और कार्यशैली के विषय में भविष्यवाणी की जा सकती है, यदि हम उसके कायदे-कानून को जान जाएँ। यहाँ जो कुछ भी घटित हो रहा है उसका कोई अन्य कारण है और प्रत्येक घटना का कोई परिणाम अवश्यंभावी है। दिक् और काल भिन्न हैं तथा गहराई से विचार करेंगे तो पदार्थ के विखंडन

**20वीं शती के आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत (Theory of Relativity) ने सिद्ध कर दिखाया कि पदार्थ वैसा ठोस नहीं है जैसा हमारी इंद्रियों से नजर आता है। पदार्थ वस्तु नहीं, ऊर्जा है। आकार लगता है। संसार की प्रकृति ठोस की न होकर सतत गति की है। प्रारंभिक क्वांटम भौतिक शास्त्रियों ने इसकी पुष्टि यह सिद्ध कर की थी कि अपने अति सूक्ष्म स्तर पर पदार्थ एक ऐसे मैदान की तरह नजर आता है जिसमें ऊर्जा के प्रोटोन, इलेक्ट्रॉन आदि प्रतिमान अबाध रीति से गतिमान हो रहे हैं।**

द्वारा उसमें मूल रचना-तत्त्वों को चिह्नित करना असंभव नहीं है।

न्यूटन का 17वीं शताब्दी का उपर्युक्त वर्णित मॉडल दैनंदिन कार्य व्यापार पर प्रायः सटीक रूप से लागू होता है। परंतु 20वीं शती के आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत (Theory of Relativity) ने सिद्ध कर दिखाया कि पदार्थ वैसा ठोस नहीं है जैसा हमारी इंद्रियों से नजर आता है। पदार्थ वस्तु नहीं, ऊर्जा है। आकार लगता है। संसार की प्रकृति ठोस की न होकर सतत गति की है। प्रारंभिक क्वांटम भौतिक शास्त्रियों ने इसकी पुष्टि यह सिद्ध कर की थी कि अपने अति सूक्ष्म स्तर पर पदार्थ एक ऐसे मैदान की तरह नजर आता है जिसमें ऊर्जा के प्रोटोन, इलेक्ट्रॉन आदि प्रतिमान अबाध रीति से गतिमान हो रहे हैं।

## वेद और विज्ञान का अद्वैत

प्रसिद्ध क्वांटम वैज्ञानिक हीजनबर्ग और नील्स बोहर तो स्वयं अपने ही परीक्षणों के परिणामों पर विश्वास न कर सके कि–

(क) अनायास ही पार्टिकल अनपेक्षित स्थान पर प्रकट हो जाते हैं।

(ख) द्रष्टा को कभी वे पार्टिकल सूक्ष्म कण के रूप में नजर आते हैं, तो कभी तरंग (वेव) के रूप में।

(ग) पार्टिकल्स को केवल उनके वातावरण के संदर्भ में ही समझा जा सकता है, एक असंपृक्त पदार्थ के नहीं। संक्षेप में हमारा भौतिक जगत् पदार्थों का संकलन न होकर, अन्तः क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का एक गतिमान जटिल जाल है।

उपर्युक्त महान वैज्ञानिकों की अवधारणा यजुर्वेद के 40वें मंडल के निम्न मंत्रों के कितने सन्निकट हैं, तुलना करने पर पाठक स्वयं समझ सकते हैं।

अनेजदेकं मनसो जवीयो
नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो
मातरिश्वा दधाति ।।

*–यजु. 40/4*

चंचलता रहित वह ईश एक (ही है जो) मन से भी अधिक वेगवान् है। वह स्फूर्तिवान् पहले से ही है, (किंतु) उसे देवगण (देवता अथवा इंद्रिय समूह) प्राप्त नहीं कर पाते। वह स्थिर रहते हुए भी दौड़ कर अन्य (गतिशीलों) से आगे निकल जाता है। उसके अंतर्गत (अनुशासन में रहकर) ही गतिशील वायु,जल को धारण किए रहता है।

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 49



तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।

*–यजु. 40/5*

वह (परमात्मतत्त्व) गतिशील भी है और स्थिर (भी) है। वह दूर से दूर भी है और निकट से निकट भी है। वह इस सब (जड़-चेतन जगत्) के अंदर भी है तथा सबके बाहर (उसे आवृत किए हुए) भी है।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगप्सवे।।

*–यजु. 40/6*

व्यक्ति (जब) सभी भूतों (जड़-चेतन सृष्टि) को (इस) आत्म तत्त्व में ही स्थित अनुभव करता है तथा सभी भूतों के अंदर इस आत्म तत्त्व को समाहित अनुभव करता है, तब वह किसी प्रकार भ्रमित नहीं होता।।

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकऽएकत्वमनुपश्यतः।।

*–यजु. 40/7*

जिस स्थिति में (व्यक्ति) यह (मर्म) जान लेता है कि यह आत्म तत्त्व ही समस्त भूतों के रूप में प्रकट हुआ है, (तो) उस एकत्व की अनुभूति की स्थिति में मोह अथवा शोक कहाँ टिक सकते हैं? अर्थात् ऐसी स्थिति में व्यक्ति मोह एवं शोक से परे हो जाता है।

काप्रा कहते हैं कि परमाणु का एक नाभिक अपने परमाणु से एक लाख गुणा (1,00,000) लघुतर है, परंतु फिर भी वह उस परमाणु के संपूर्ण द्रव्यमान (Mass) का वाहक है। इसका अर्थ हुआ कि कुर्सी, सेब अथवा व्यक्ति रूपी पदार्थ हमें ठोस बेशक नजर आते हैं, परंतु वास्तव में खाली जगह पर अवस्थित-तीव्र हिलोरे हैं। खाली स्थान जीवंत गुण संपन्न है और पार्टिकल्स स्वतः ही कभी भी अकारण ही उससे बाहर छलांग लगा सकते हैं। वे ऊर्जा से पैदा किए जा सकते हैं, ऊर्जा में समा सकते हैं। पदार्थ और इसके चारों तरफ के शून्य का भेद तिरोहित हो जाता है। शून्य ही प्रमुख हो जाता है, पदार्थ नहीं। शून्य ही जीवंत हो उठता है और पदार्थ मात्र उसके चलते-फिरते प्रतिमान मात्र सिद्ध होते हैं।

क्वांटम भौतिकी में पार्टिकल का निर्माण और विनाश अकारण ही होता रहता है। एक क्षेत्र के बाहर आना-जाना लगा रहता है। परंतु कुछ न होने का अर्थ खाली होना नहीं है। उदाहरण के लिए वेदांत में खाली के लिए ब्रह्म शब्द का प्रयोग मिलता है, जो सबका उद्गम-स्थल है। नटराज शिव का नृत्य निर्माण और विनाश

**क्वांटम भौतिकी में पार्टिकल का निर्माण और विनाश अकारण ही होता रहता है। एक क्षेत्र के बाहर आना-जाना लगा रहता है। परंतु कुछ न होने का अर्थ खाली होना नहीं है। उदाहरण के लिए वेदांत में खाली के लिए ब्रह्म शब्द का प्रयोग मिलता है, जो सबका उद्गम-स्थल है। नटराज शिव का नृत्य निर्माण और विनाश की शाश्वत् प्रक्रिया की ही अभिव्यक्ति है। बौद्ध मत में शून्य जीवंत रिक्तता है जिसमें प्रत्येक भौतिक वस्तु जन्म लेती है।**

की शाश्वत् प्रक्रिया की ही अभिव्यक्ति है। बौद्ध मत में शून्य जीवंत रिक्तता है जिसमें प्रत्येक भौतिक वस्तु जन्म लेती है।

हिजनबर्ग के अनुसार हम आणविक संसार के द्रष्टा न रहकर, सहभागी बन जाते हैं। काप्रा ने भगवद्गीता का उद्धरण दिया है कि प्रकृति की अपनी शक्तियों के ताने-बाने में कालांतरित क्रियाएँ होती हैं, परंतु स्वार्थ के भंवर में डूबा मनुष्य सोचता है कि वही सब कुछ कर रहा है। उपनिषद् में भी कहा गया है कि जब मस्तिष्क उद्वेलित होता है तो नाना प्रकार की वस्तुओं का जन्म होता है; परंतु जब मन शांत हो जाता है तो अनेकत्व

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 50

तिरोहित हो जाता है।

निष्कर्ष रूप में काप्रा कहते हैं कि आधुनिक विज्ञान अधिकाधिक मात्रा में आध्यात्मिक और रहस्यवादी मान्यताओं की पुष्टि करता जा रहा है।

## मेस्केलिन (Mescalin) का भ्रम जाल

यह आलेख मुख्यरूप से अध्यात्म-दर्शन और भौतिक-विज्ञान से संबंधित है। दोनों ही विषय गंभीर चिंतन और मनन पर आधारित होने के कारण, विषय के सम्यक् प्रतिपादन का कुछ मात्रा में बोझिल हो जाना स्वाभाविक है। यह मेरे वश से भी बाहर की बात रही है। इस अंतिम प्रकरण के माध्यम से, विषय से न भटकते हुए, मैंने समापन के रूप में एक ऐसे प्रसंग का उल्लेख करना उपयुक्त समझा है जो 20वीं शती के प्रमुखतम दार्शनिक-साहित्यकारों में से एक एलडस हक्सले से ही नहीं हमारे मूल विषय से भी पूरी तरह सीधे-सीधे संपृक्त हैं, साथ ही साथ विस्मयकारी तथा गुदगुदी पैदा करने वाला भी।

इंग्लैंड के प्रसिद्ध एटन कॉलेज और आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रतिभावान विद्यार्थी एलडस हक्सले, आँख की एक अजीब बीमारी के कारण चाहते हुए भी वैज्ञानिक न बन कर दार्शनिक-साहित्यकार बन गए थे। 1920 में वे भारत भ्रमण पर भी आए थे और 1937 में स्थायी रूप से अमेरिका के कैलीफोर्निया में जा बसे थे। संयोग से सन् 1963 में उनका उसी दिन स्वर्गवास हो गया जिस दिन सी.एस. लीविस और अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति जोहन एफ. केनेडी का हुआ था।

हक्सले की प्रारंभ से ही यह जानने-समझने में रुचि थी कि किस प्रकार से वस्तुओं की ओर देखने का हमारा नजरिया हमें मुक्त अथवा बंदी बना कर रख सकता है।

उन्होंने विभिन्न धर्मों, विशेषकर हिंदू संतों, योगियों, रहस्यवादियों आदि के विषय में पढ़ा था और अपनी प्रसिद्ध पुस्तक शाश्वत दर्शन (Perennial Philosophy) में इस विषय की विस्तार से चर्चा भी की थी। वे स्वयं उन सिद्ध महापुरुषों, संत-महात्माओं अथवा वैज्ञानिकों की तरह सत्य के सही रूप को देख पाने में असमर्थ पाते थे। परंतु सत्य के सही स्वरूप को जानने समझने को वे जीवन भर लालायित रहे। वे भारतीय रहस्यवादी संतों-योगियों द्वारा स्वानुभूत सत्य का किसी प्रकार से दिग्दर्शन, एक झलक ही क्यों न हो, करना चाहते थे।

इसके लिए सन् 1953 के वसंत के एक दिन

एलडस हक्सले

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 51



उन्होंने अपनी पत्नी मारिया और एक अन्य मित्र की उपस्थिति में लॉस एंजोलिस के अपने निवास पर ही अमेरिका के दक्षिण-पश्चिम में प्रयोग की जाने वाली एक नशीली जड़ी-बूटी मेस्केलिन का स्वयं पर प्रयोग किया तथा उसके अनुभव को साझा भी किया। उन्हें लगा कि मेस्केलिन के प्रभाव में दिक्, काल और दूरी का भेद धूमिल-सा हो गया था। उन्हें लगा कि उनकी घड़ी किसी अन्य लोक में है। वह स्वयं अनंत वर्तमान में जी रहे हैं। पौर्वात्य धर्मों में वर्णित तत्क्षण का आनंद ले रहे हैं, भूत और भविष्य से पूरी तरह असंपृक्त हैं। मेज, कुर्सी, डेस्क, कमरे में रखे हैं, परंतु किसी पदार्थ के रूप में नहीं अपितु भावात्मक आकृतियों के रूप में। उन्होंने अनुभव किया कि भाषा और कला कितनी भी सुंदर क्यों न हो उच्च अदृश्य सत्य की प्रतिकृति ही हो सकती है, साक्षात् सत्य नहीं।

आश्चर्य नहीं हक्सले का भी वही हाल हुआ, जो हिप्पियों का हुआ। निष्कर्ष रूप में उसे भी स्वीकार करना पड़ा कि सत्य से साक्षात्कार का मार्ग राजयोग की लंबी तपस्या रूपी प्रक्रिया से गुजरने के पश्चात् समाधि अवस्था में ही संभव है, मेस्केलिन जैसे मादक द्रव्यों के सेवन से उत्पन्न मदहोशी में नहीं।

क्योंकि मेस्केलिन का असर भी केवल कुछ देर ही रह पाया, उन्हें सर्वांगपूर्ण सत्य का दर्शन नहीं करा सका, ऋतम्भरा प्रज्ञा प्रदान न कर सका। हमने प्रारंभ में ही कहा था कि वे तो योग की समाधि अवस्था में किन्ही बिरले को ही गूंगे के गुड़ की तरह स्वानुभूति के रूप में मिल पाते हैं।

**लेखक शिक्षाविद् व चिंतक हैं।**

**संदर्भ**

1.वेद
2. उपनिषद्
3. ब्राह्मण ग्रंथ
4. बौद्ध साहित्य
5. जैन साहित्य
6. तत्त्व विज्ञान - हरिश्चंद्र बर्थ्वाल
7. The Holy Bible
8. On the Origin of species
- Charles Darwin
9. Meditation on First philosophy
- Rena Descarte
10. The Passions of The Soul
- Rena Descarte
11. Principia - Issac Newton
12. Philosophy of Nature - Issac Newton
13. The Doors of Preception
- Aldous Huxley
14. Brave New World - Aldous Huxley
15. The perennial Philosophy - Aldous Huxley
16. The Web of life - Fritzof Capra
17. The Tao of Physics - Fritzof Capra
18. Lost Discoveries - Dick Teresi
19. The Complete works of Swami Vivekanand
20. Talks with Raman Maharshi
- Inner Direction Publishing
21. The Holy Geeta
- Swami Chinmayanand

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 52

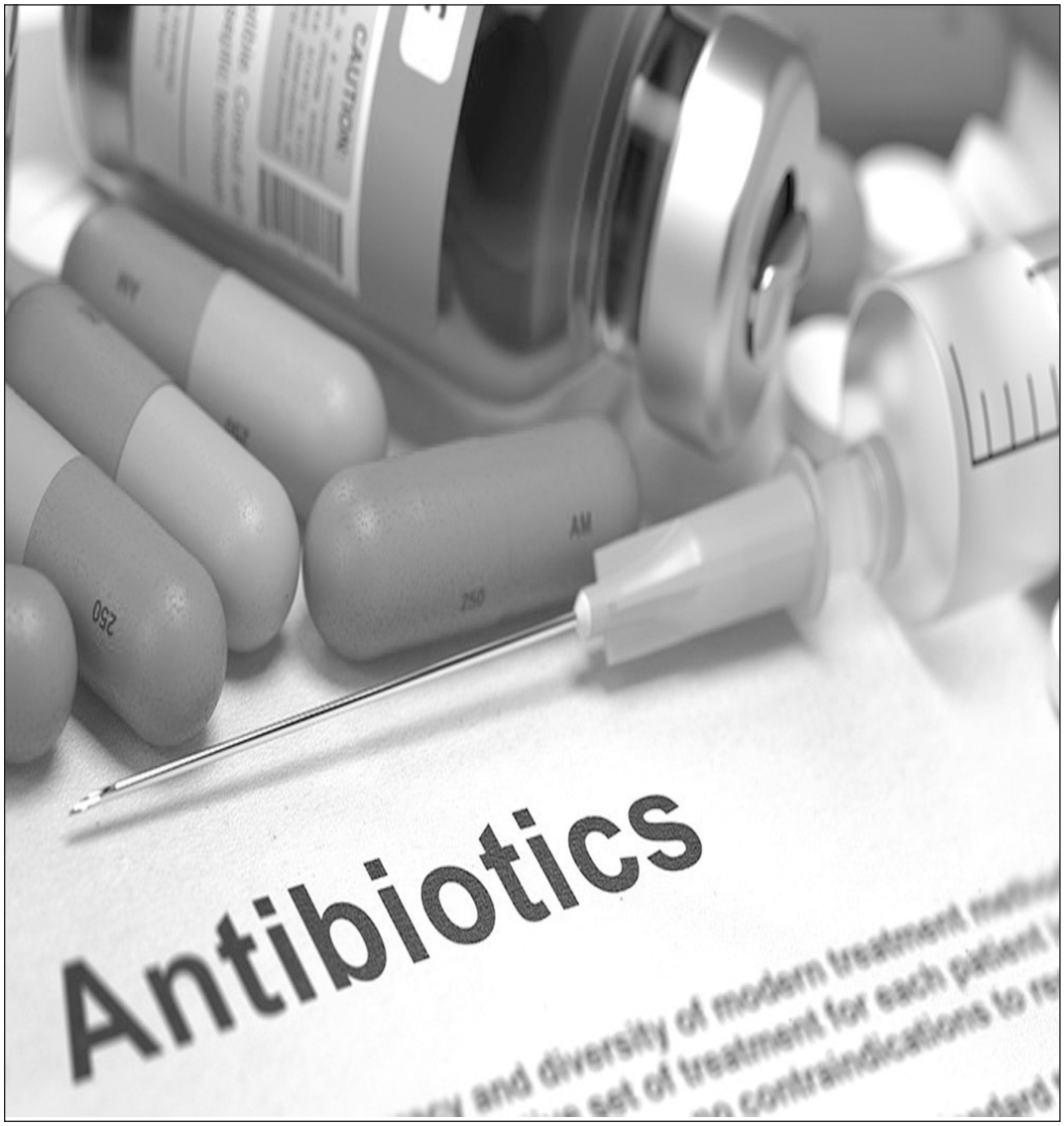


**एंटीबायोटिक औषधियों के विकास ने रोगों से पीड़ित मानव को बहुत राहत दी थी। बैक्टीरिया नामक सूक्ष्म जीवाणुओं से निमित्त इन औषधियों से अनेक असाध्य रोगों का इलाज सहज और सुलभ हो गया था। लेकिन जीवनदायिनी समझी जाने वाली इन औषधियों का उपयोग जब व्यापक स्तर पर होने लगा, तो बैक्टीरिया में प्रतिरोधक क्षमता विकसित होने लगी जिसके कारण इन औषधियों का प्रभाव कम होने लगा। इससे चिकित्सा जगत् में निराशा का भाव पनपने लगा, परंतु दुनियाभर के वैज्ञानिक निरंतर इस प्रयास में लगे हैं कि एंटीबायोटिक औषधियों को निष्फल होने से कैसे बचाया जाए। वैज्ञानिकों के इन्हीं प्रयासों को रेखांकित कर रहे हैं प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल –**

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 53

डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल

# एंटीबायोटिक औषधियाँ : उत्थान, पतन और भविष्य

मानव शरीर के सबसे बड़े मित्र और शत्रु विश्व के वे सूक्ष्मतम प्राणी हैं जिन्हें नग्न आँखों से देखा तक नहीं जा सकता। इन्हें बैक्टीरिया (एक वचन-बैक्टीरियम) के सामान्य नाम से जाना जाता है। लेख की दृष्टि से यदि हम मित्र बैक्टीरिया को छोड़ दें तो असंख्य बीमारियों के जनक के रूप में शेष का शत्रु रूप पूर्ण रूप से उजागर हो जाता है। आमाशय में कष्ट हो अथवा कंठ में शूल, अधिकतर बार कारण होंगे बैक्टीरिया ही या फिर यक्ष्मा, टायफॉयड तथा न्यूमोनिया जैसे संक्रमणकारी रोगों की जड़ में तो सौ प्रतिशत बैक्टीरिया ही होंगे। ऐसे कष्टदायक जीवाणुओं से त्राण पाने के लिए वैज्ञानिकों ने जिन अमोघ समझी जाने वाली औषधियों का विरचन किया, उन्हें ही एंटीबायोटिक कह कर पुकारा गया।

वस्तुतः ये औषधियाँ कतिपय सूक्ष्म जीवों अथवा फफूंदी जैसे अवयव के ऐसे स्राव हैं जो बीमारियों को जन्म देने वाले बैक्टीरिया के लिए विनाशकारी होते हैं। प्रथम एंटीबायोटिक पेनिसिलिन का ज्ञान मानवता को 1928 में तब हुआ जब एक स्कॉटलैंडवासी वैज्ञानिक अलेक्जेंडर फ्लेमिंग ने देखा कि एक पैट्री डिश (प्रयोगों के लिए काम आने वाली एक प्रकार की प्लेट) में उसके द्वारा छोड़ दिए गए बैक्टीरिया, एक फफूंदी जो बचे खुचे भोज्य पदार्थों आदि पर स्वमेव उपज जाती है, के संसर्ग में आने पर उससे होने वाले स्राव के कारण काल कवलित हो गए। यह अनचाहा प्रेक्षण क्रांतिकारी सिद्ध हुआ। यद्यपि औषधि के रूप में पेनिसिलिन के विकास में लगभग दस वर्ष और लग गए तथा औषधि विकास का श्रेय मिला वैज्ञानिक द्वय फ्लोरी एवं चेन को।

इसके पश्चात् तो अनेक एंटीबायोटिक औषधियाँ धड़ाधड़ सामने आने लगीं और इन सबने आधुनिक चिकित्सा के क्षेत्र को चमत्कारी रूप से आंदोलित कर दिया। ऐसा लगने लगा जैसे अनेक असाध्य रोगों के प्रतिकार के लिए चिकित्सकों के हाथ में जादुई छड़ी आ गई है। इस संबंध में लेखक के स्वयं के जीवन से दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं। बचपन में लेखक दो-तीन बार

टायफॉयड के चंगुल में फँसा। उस समय किसी कारगर औषधि के अभाव में डॉक्टर सामान्य-सी औषधि तथा इस बीमारी के स्वयं ही समाप्त हो जाने की प्रक्रिया पर निर्भर थे। एकाएक बाजार में क्लोरेमफेनीकाल आ गई और तब उस बार लेखक एक सप्ताह में ही ठीक हो गया। इसी प्रकार उसकी बुआ को जब यक्ष्मा ने ग्रसा तो परिवार सकते में आ गया। परंतु डॉक्टर ने कहा कि स्ट्रेप्टोमाइसिन के विरचन के साथ यक्ष्मा उपचार साध्य हो गया था। ऐसा ही हुआ भी। बुआ जी शीघ्र स्वस्थ हो गईं और परिवार ने चैन की साँस ली।

धीरे-धीरे चिकित्सक इन औषधियों का व्यवहार इतने बड़े स्तर पर करने लग गए कि इनसे समाप्त होने वाले बैक्टीरिया में प्रतिरोधक क्षमता का विकास होने लगा तथा एंटीबायोटिकों की रोग-विनाशक शक्ति क्षीण होने लग गई। स्पष्टतः गंभीर एवं असाध्य रोगों के विरुद्ध मानवता की जंग में चिकित्सा का सर्वोत्तम हथियार भोथरा होता जा रहा था। परिणाम विनाशकारी रहे। वर्ष 2014 में विश्व भर में लगभग सात लाख व्यक्ति (नवजात शिशुओं की संख्या लगभग 58,000 रही) एंटीबायोटिकों के निष्फल हो जाने के कारण मृत्यु का ग्रास बने। अनुमान है कि यह संख्या 2050 में एक करोड़ तक पहुँच जाएगी।

अत्यधिक तथा बहुधा अनावश्यक उपयोग (जैसे फ्लू में) के कारण लक्षित बैक्टीरिया के जीन में ऐसे उत्परिवर्तन होने लग गए जिन्होंने उसे औषधि प्रतिरोध में सक्षम बना दिया। एक अन्य विधि से भी औषधि प्रतिरोधी शक्ति का विकास हुआ। एंटीबायोटिक उत्पादन करने वाले प्रतिष्ठानों का औषधि से संदूषित जल तथा कचरा आदि जब मिट्टी में अवशेषित हुए तो उसमें प्राकृतिक रूप से उपस्थित सामान्य बैक्टीरिया में भी ऐसे ही उत्परिवर्तन हुए और तब उनके औषधि प्रतिरोधी जीन को बीमारियों के वाहक बैक्टीरिया (जो स्वयं ही मिट्टी में या कहें कि पर्यावरण में उपस्थित थे/हैं) द्वारा उधार स्वरूप ग्रहण कर लिया गया। 2007 में स्वीडिश वैज्ञानिकों ने पुणे के फार्मा कंपनियों के मलजल के बैक्टीरिया में एंटीबायोटिक सिप्रोफ्लॉक्सेसिन प्रतिरोधी जीन की पहचान की। 2017 में हैदराबाद में भी ऐसा ही उदाहरण देखने को मिला। एंटीबायोटिक औषधि प्रतिरोधी जीन के स्वामी बन चुके रोगों के वाहक बैक्टीरिया सुपरबग कहलाए। ऐसा पहला सुपरबग भारत में ही वर्ष 2008 में प्रकाश में आया और तब बवाल मच गया। उस बग का नामकरण हुआ एन.एम.डी.-1 (न्यू डेल्ही मेटैलोबीटा लैक्टामास-1)। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने बारह ऐसे सुपरबगों की सूची जारी की है जो अजर-अमर हैं। इन्हीं में क्लैबसीला न्यूमोनी बैक्टीरिया भी है जिसने कुछ समय पूर्व ही यह उपाधि प्राप्त की है। ये बैक्टीरिया साधारणतः मूत्र, फेफड़ों तथा रक्त में गंभीर संक्रमण उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार, सद्यःजात मुर्गियों को बीमारियों से बचाने के लिए कोलिस्टीन के बढ़ते उपयोग से खतरा उत्पन्न हो रहा है कि इस एंटीबायोटिक, जिसे चिकित्सक आज अंतिम आशा कहते हैं, के प्रतिरोधी जीन भी बैक्टीरिया में शीघ्र ही विकसित हो जाएँगे और औषधि का पतन हो जाएगा।

सुपरबगों ने वैज्ञानिकों को हतप्रभ कर दिया है। अनेक बीमारियाँ जिन पर विजय प्राप्त की जा चुकी थी, आज पुनः राक्षसी अट्टहास कर रही हैं। उन्हीं में यक्ष्मा भी है। ऐसी दशा में वैज्ञानिक अंधकार में तीर मार रहे हैं। कुछ नए अत्यंत क्षमतावान एंटीबायोटिकों के विरचन के प्रयत्न हो रहे हैं, तो कुछ वैज्ञानिक पुरानों की क्षमता में ही वृद्धि के रास्ते खोज रहे हैं। कुछ परिणाम प्राप्त भी हुए हैं। यद्यपि अंतिम रूप से अभी कुछ भी हाथ नहीं आ सका है। ऐसे कुछ प्रयत्नों का वर्णन एंटीबायोटिकों के भविष्य के रूप में लेख में आगे किया जा रहा है।

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 55



**नकारा होती एंटीबायोटिक औषधियों के इस युग में एक नया बाहुबली एंटीबायोटिक प्रकाश में आया है - टीक्सोबैक्टिन (teixobactin)। 2015 में अमरीकी वैज्ञानिकों ने इसे मिट्टी से प्राप्त किया। तत्पश्चात् इसका किंचित परिवर्तित रूप प्रयोगशाला में संश्लेषित किया गया। यह रूप मेथिसिलीन प्रतिरोधी स्टेफाइलोकोक्काई सदृश बिगड़ैल बैक्टीरिया को नियंत्रित करने में समर्थ सिद्ध हुआ। इस नए एंटीबायोटिक ने मानवता में आशा का नया संचार किया है। प्रयोग चल रहे हैं। विश्वास है कि इसके एकाधिक संसाधित रूप नई एंटीबायोटिक औषधियों के रूप में शीघ्र बाजार में अवतरित होंगे। यह शोध समय पूर्व जर्नल ऑफ मेडिसिनल केमिस्ट्री में प्रकाशित हुई।**

14 जनवरी 2018 के 'द हिंदू' अंग्रेजी दैनिक (दिल्ली संस्करण) में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार वैज्ञानिक एक ऐसे अत्यंत सशक्त एंटीबायोटिक के विरचन में सफल हुए हैं जिसकी प्रतिरोधी शक्ति का विकास अनेक प्रकार के बैक्टीरिया में लगभग असंभव है। उन्होंने इसे SAAP-148 नाम दिया है। वस्तुतः यह औषधि एक ह्यूमैन एंटीमाइक्रोबियल पेप्टाइड LL37 का परिवर्धित रूप मात्र है। विश्व इस औषधि के बाजार में आने की आतुरता से प्रतीक्षा कर रहा है।

कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने पुरानी औषधि में किंचित गुणात्मक परिवर्तन कर उसे ऐसा रूप देने का प्रयत्न किया है कि वह कतिपय नितांत शक्तिशाली सुपरबगों के विरुद्ध भी प्रभावी बन जाए। उन्होंने ऐसी संशेधित औषधियों को Supercharged drug कहा है। उदाहरण के लिए वैनोमाइसिन में ऐसे परिवर्तन किए गए कि वह औषधि प्रतिरोधी बैक्टीरिया की दीवार से चिपक कर उन्हें क्रियाशील होने से ही रोकने में सक्षम हो गई। यह वैनोमाइसिन (अब नया नाम - वैनकैप्टिसिन) ऐसे ही कतिपय बैक्टीरिया के विरुद्ध अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुई है (देखें - द हिंदू, दिल्ली संस्करण, 7 जनवरी, 2018)।

अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, दिल्ली की वैज्ञानिक जया श्रीवास्तव ने सिद्ध किया कि यक्ष्मा रोगियों की प्रारंभिक चिकित्सा में प्रयुक्त पाइरैजिनैमाइड औषधि की क्रियाशक्ति विटामिन सी के माध्यम से बहुत अधिक बढ़ाई जा सकती है। (देखें- द हिंदू, दिल्ली संस्करण 21 जनवरी, 2018)। विटामिन सी यक्ष्मा बैक्टीरिया को अक्रिय बनाकर औषधि की क्रियाशीलता में 8-10 गुणा तक वृद्धि कर देता है। इसी प्रकार, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, रुड़की की प्रो. रंजना पठानिया ने एक विशिष्ट रसायन की सहायता से न्यूमोनिया तथा मूत्रनली संक्रमण आदि के लिए उत्तरदायी बैक्टीरिया के विरुद्ध प्रभावहीन हो चुकी औषधियों, सिप्रोफ्लॉक्सेसिन तथा नॉरफ्लॉक्सेसिन की क्षमता में इतनी अधिक वृद्धि करने में सफलता प्राप्त कर ली कि वे पुनः प्रभावी हो गई। उनका शोध पत्र International Journal of Antimicrobial Agents में कुछ समय पूर्व ही प्रकाशित हुआ।

एंटीबायोटिक औषधियों के पतन से चिकित्सकीय जगत् में हताशा का वातावरण है। संपूर्ण मानवता भी चिंतित है। बीमारियों से संघर्ष के लिए उसे एक नया हथियार मिलना ही चाहिए। इस दृष्टि से प्रस्तुत किए गए प्रयत्न निश्चय ही महत्त्वपूर्ण हैं।

**लेखक शिक्षाविद्, वैज्ञानिक व केंद्रीय हिंदी समिति के पूर्व सदस्य हैं।**

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 56

अमलताश

विकास की भौतिकवादी और उपभोक्तावादी अवधारणा के कारण जैव संपदा का क्षरण निरंतर हो रहा है। जिसकी वजह से वनस्पतियों व जीव-जंतुओं की कई प्रजातियाँ लुप्त हो गई हैं और कई प्रजातियाँ लुप्त होने के कगार पर हैं। पर्यावरणविदों का मानना है कि जैव संपदा के क्षरण के कारण हमें प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ रहा है। इन अपादाओं से बचने का उपाय है जैव संपदा के क्षरण को रोकना, जिसके लिए आवश्यक है कि समाज को इस जैव संपदा की उपयोगिता समझाई जाए, जिससे मनुष्य इस उपयोगी जैव संपदा को बचाना अपना धर्म समझ कर इसका संरक्षण करे।

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 57

# जैव विविधता का उपयोग ही है उसका संरक्षण

इस मानसून में हमने केरल में विनाशकारी बाढ़ की त्रासदी झेली है। पर्यावरणविदों के अनुसार वन संपदा का अत्यधिक दोहन और विनाश तथा नदियों से रेत का दोहन इस प्रकार की त्रासदी का कारण बनते हैं। हम चिकित्सक भी वनों के दोहन और विनाश के दुष्परिणाम झेलते हैं। जैव विविधता संरक्षण के लिए गाँवों में मेरा अनुभव रहा कि विविध पौधों के विषय में जो सहज जानकारी हमारे समाज में थी, वह अगली पीढ़ी तक खत्म हो गई है। जिन गाँवों में भी हमने इन जानकारियों को साँझा किया, समझाया; वहाँ संरक्षण हुआ। अतः मेरा मानना है कि उपयोग बताए, समझाए बिना जैव विविधता का संरक्षण नहीं होगा। यदि हम उसे पुनः नित्योपयोगी बना देंगे, उसका तो संरक्षण हो जाएगा। मैं आज कुछ औषधीय पौधों की उपयोग विधि के बारे में बताऊँगी जिन पर अमेरिका में पेटेंट भी हो गया है। हम अपनी विविधता को बचाने में भागीदार हो सकते हैं। केवल उसके उपयोग की जानकारी बाँट कर एवं बढ़ावा देकर–

**कुमारी (घृत कुमारी, Aloe vera)**

सर्वसुलभ बहुपयोगी समान्य औषधीय पौधा है। इसका निम्न प्रकार विभिन्न रोगों में उपयोग कर सकते हैं–

- घाव से रक्त बहना - यदि किसी घाव से रक्त बह रहा है, तो स्वच्छता से पौधे का रस निकाल कर घाव धोएँ। इससे रक्त स्राव भी रुकेगा और संक्रमण का खतरा भी नहीं रहेगा।
- मासिक स्राव अधिक और दर्द के साथ हो तो 100 ग्राम गूदे को पीसकार मिश्री मिलाकर रखें और 10 ग्राम दिन में दो बार 3 दिन तक लें।
- अनियमित मासिक स्राव–तीन पत्तों के गूदे को ताँबे के बर्तन में उबालें, वह भूरे रंग

घृत कुमारी

का हो जाएगा, उसे पीसकर रखें और 1-1 चम्मच सुबह-शाम पाँच दिन तक मासिक स्राव आने से पहले लें।

- कब्ज– गूदे को सुखाकर रख लें ओर आवश्यकता अनुसार रोज रात को गर्म जल से लें।
- जलने पर– पत्ती को धोकर चीर लें और कटे या जले स्थान पर बाँधे।
- आँखों का दुखना– पत्ती को चीरकर एक-एक टुकड़ा दोनों आँखों पर रखकर पट्टी बाँध लें। कुछ देर ऐसे ही लेटे रहें या सोते समय बाँधे।
- श्वास – इसकी पत्ती को चीरें, निकलने वाले रस को जमा करके इस रस में वासा का रस और मिश्री मिलाकर 1-1 चम्मच हर 2 घंटे पर लें।
- खाँसी – दो चम्मच गूदे को 1/2 चम्मच घी में भूनें फिर मिश्री मिलाकर 1-1 चम्मच दिन में 2-3 बार लें।

## अमलताश

देश में पार्कों और सड़कों के किनारे अमलताश के पीले फूलों वाले पेड़ मिल जाते हैं। इसकी फलियाँ पकने पर काली-काली लंबी लटकती रहती हैं। सूखने पर फलियों को तोड़ कर गूदा इक्ट्ठा किया जाता है।

- कब्ज– यह कब्ज दूर करने का बहुत ही सुरक्षित उपाय है। बच्चों, गर्भवती महिलाओं, कमजोर शरीर वालों को भी निश्चिंत होकर दिया जा सकता है। बुखार के दौरान या बाद में कब्ज में देने में बहुत लाभदायक है। 5 से 10 ग्राम गूदे को पानी में भिगोकर पका कर पीने को दें।
- मधुमेह (डायबीटीज), गाऊट, रह्यूमेटाइड आर्थराईटिस में इसे लेने से कब्ज के साथ-साथ दर्द व सूजन में भी राहत मिलती है।
- टाँसिल व गले की खराश में इसकी छाल के काढ़े से गरारे करने से आराम मिलता है।
- बच्चों की कब्ज - जो बच्चे माँ का दूध लेते हैं उन छोटे बच्चों की कब्ज में चने के बराबर गूदे को एक चम्मच पानी में घोलकर देने से लाभ होता है। (तीन दिन तक दें)
- रिंगवर्म (दाद)– आधा कप गर्म पत्तियों को पीसकर चटनी-सी बना लें और सात दिनों तक प्रभावित स्थान पर लगाएँ।
- बच्चों में पेट के कीड़े– गूदे को पानी में घोलकर सुबह पिलाएँ।
- त्वचा के रोग– पत्तों के काढ़ से प्रभावित स्थान को धोएँ।

## दूधी

खेतों में, पार्कों, सड़क किनारे बहुतायत से उपलब्ध होती है।

- मल में रक्त व आँव आने पर– दूधी का रस पिलाने से बहुत आराम मिलता है।
- पेट के कीड़ों के लिए– बच्चों को पेट के कीड़ों व पेट की अन्य गड़बड़ी में इसका रस दिया जाता है।
- दूध को बढ़ाने वाली– प्रसूता स्त्रियों में दूध को बढ़ाने के लिए इसका रस 30 मि.ली. की मात्रा में दिन में दो बार, कुछ दिन दिया जाता है।

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 59

दूधी

जंगली एरंड

- जीर्ण खाँसी व श्वास में– पुरानी खाँसी व श्वास रोग में इसका काढ़ा बना कर देने से बलगम निकालने में मदद मिलती है।
- उल्टियाँ रोकने में– उल्टियाँ रोकने के लिए इसकी जड़ को पीसकर दें।
- त्वचा के रोगो में– इसको तोड़ने पर इसका जो दूध निकलता है उसे त्वचा पर प्रभावित भाग पर लगाएँ।
- उल्टी करवाने के लिए– इसकी जड़ उल्टी रोकती है, किंतु उल्टी करवाने के लिए इसका काढ़ा पिलाया जाता है।
- मस्से– इसके दूध को मस्से पर लगाने से मस्से सूखने लगते हैं।
- इसमें वायरसरोधी, बैक्टीरियारोधी व कैंसररोधी गुण हैं।
- इसके पके फलों को वीर्य वृद्धि के लिए उपयोग किया जाता है।

## जंगली एरंड

देश भर में सड़कों के किनारे व खाली पड़े भूखंडों में मिलता है।

- रक्त स्राव में– इस पौधे के रस को चोट लगने पर खून रोकने के लिए प्रयोग किया जाता है। इससे घाव जल्दी सूख जाता है।
- मसूड़े से रक्त आने पर– इसके पत्तों के काढ़े से कुल्ले कराने में लाभ मिलता है।
- सूजन व दर्द में– जोड़ों में या चोट से आई सूजन में इसके पत्तों की पुल्टिस बाँधने से दर्द व सूजन में आराम होता है।
- दूध बढ़ाने के लिए– इसके पत्तों को गर्म करके माता के स्तनों पर बाँधने से दूध का प्रवाह बढ़ता है।
- अपचन व पेट दर्द– अपचन व पेट दर्द की अवस्था में इसकी एक उंगली लंबी जड़ को सात पिप्पली के साथ पीसकर छाछ से दिया जाता है।
- खुजली व अन्य त्वचा के रोग में - इसके तेल से त्वचा के रोगों में लाभ होता है।

7. जोड़ों का दर्द– एरंड के तेल की मालिश से लाभ होता है।

**लेखिका प्रकाश इंस्टीट्यूट ऑफ आयुर्वेद , बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश में प्रोफेसर हैं।**

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 60

# मनोगत

**मान्यवर महोदय,**

आपको विजय दशमी और दीपावली की हार्दिक शुभकामनाएँ। विजय पर्व और ज्योति पर्व आपके और आपके परिवार के लिए मंगलमय हो। इस शुभ अवसर पर 'मंगल विमर्श' का अक्तूबर-2018 अंक आपके हाथो में सौंपते हुए प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। पत्रिका के संबंध में समय-समय पर आपके विचार और सुझाव हमारे लिए बहुत ही प्रेरक और मार्गदर्शक होते हैं।

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 61



## सिनोली (बागपत) से प्राप्त पुरातात्विक अवशेष : एक विवेचन

मंगल सृष्टि द्वारा आयोजित की जाने वाली गोष्ठियों के क्रम में 15 जुलाई, 2018, रविवार को आयोजित 'सिनोली (बागपत) से प्राप्त पुरातात्विक अवशेष : एक विवेचन' विषयक गोष्ठी में पुरातत्वविद् श्री अमित राय जैन ने बताया कि गंगा किनारे स्थित हस्तिनापुर (जिला मेरठ) से लेकर, वहाँ से लगभग 90 किलोमीटर दूर यमुना किनारे स्थित व्याघ्रपत (बागपत), वरणावत (बरनावा वर्तमान में पश्चिम उत्तर प्रदेश), सोनीपत व पानीपत (वर्तमान में हरियाणा) का क्षेत्र महाभारतकालीन कुरु जनपद का क्षेत्र रहा है।

दिल्ली-यमुनोत्री राजमार्ग पर दिल्ली से लगभग 55 किलोमीटर दूर स्थित बागपत जिले में बड़ौत-छपरौली मार्ग पर एक गाँव है सिनोली। यहाँ से लगभग 6 किलोमीटर दूर पश्चिम में यमुना नदी बहती है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग (ए.एस.आई) ने सितंबर, 2005 में यहाँ उत्खनन कार्य किया था। यहाँ से 125 मानव अवशेष प्राप्त हुए थे। ये सभी उत्तर-दक्षिण दिशा में दफनाए गए थे। यह शव 1-2 वर्ष के बच्चों से लेकर विभिन्न आयुवर्गों के लोगों के थे। इनमें कुछ अवशेषों की पहचान महिला के रूप में हुई है तथा कुछ की पहचान पुरुष के रूप में हुई है तथा कुछ शव पहचाने नहीं जा सके । इन शवों के साथ जिन वस्तुओं के अवशेष मिले हैं, उससे स्पष्ट है कि इनका वैदिक परंपरा से संबंध था और इन्हें विशेष प्रक्रिया द्वारा सम्मानपूर्वक दफनाया गया था। इन शवों के साथ कानों व पैरों में पहने जाने वाले स्वर्ण आभूषण, मनके, विभिन्न प्रकार के मृदभांड, ताँबे की वस्तुएँ, ताँबे की 7 तलवारें व ढाल प्राप्त हुई, जिस पर तीर के आकार के 18+18 चिह्न एक दूसरे के आमने-सामने बने हैं। इन शवों के साथ ही पशुओं की कुछ अस्थियाँ भी प्राप्त हुई हैं। यहाँ से मिट्टी से बनी मशरूम के आकार की तश्तरी भी मिली है, यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है क्योंकि ऐसी तश्तरी अभी तक किसी स्थान पर प्राप्त नहीं हुई है।

यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान देने की है कि अबतक 'हड़प्पा सभ्यता' के संबंध में जितने भी उत्खनन हुए है वहाँ ताँबे की वस्तुएँ नहीं मिली हैं, परंतु सिनौली में 2005 के उत्खनन में ताँबे की वस्तुओं का मिलना बहुत महत्त्वपूर्ण है। ताँबे का प्रयोग, लोहे के आविष्कार से बहुत पहले ही होने लगा था। सिनोली में इतना बड़ा शवाघान स्थल मिलने से अनुमान लगाया जाता है की इसके आसपास अवश्य ही कोई आवासीय बस्ती रही होगी जो अभी तक नहीं मिली है।

सिनौली से 2005 के उत्खनन में प्राप्त अवशेष कार्बन डेटिंग के अनुसार 2200-1800 ईसा पूर्व के हैं और सिंधु घाटी सभ्यता से संबंधित महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

इस उत्खनन के संबंध में एक विशेष बात यह है कि सिनौली में खेतों से मिट्टी उठाते समय किसानों को ताँबे के कुछ पुरातात्विक अवशेष मिले थे, जिनके आधार पर नागरिकों, स्थानीय इतिहासकारों व पुरातत्वविदों के प्रयासों से भारतीय सर्वेक्षण विभाग ने यहाँ सितंबर 2005 में उत्खनन कार्य प्रारंभ किया था जो सात माह तक चला था। यहाँ से प्राप्त सभी पुरातात्विक सामग्री दिल्ली ले आई गई थी। परंतु खेदपूर्वक कहना पर रहा है कि पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने अभी तक इस उत्खनन की आधिकारिक रिपोर्ट प्रकाशित नहीं की है।

श्री अमित राय जैन ने बताया कि केंद्र सरकार की

महाभारतकालीन स्थलों पर उत्खनन कराने संबंधी योजना के अंतर्गत भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने बरनावा स्थित लाखा मंडल के 108 बीघा क्षेत्र में इसी वर्ष उत्खनन कार्य प्रारंभ किया था। यह उत्खनन स्थल 2005 के उत्खनन स्थल सिनौली के पास में ही है, इसी बात को ध्यान में रखते हुए केंद्रीय संस्कृति मंत्री श्री महेश शर्मा से अनुरोध किया कि 'बरनावा उत्खनन' के साथ ही सिनौली में भी एक परीक्षण उत्खनन कराया जाए, क्योंकि 2005 के उत्खनन के बाद इस क्षेत्र में पुरातत्व महत्त्व की कई वस्तुएँ प्राप्त हुई थीं, इन्हीं के आधार पर स्थानीय इतिहासकारों के सहयोग से इस क्षेत्र में 140 पुरातात्विक स्थलों की सूची तैयार कर पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग को सौंपी गई थी। ए.एस.आई ने उक्त अनुरोध के आधार पर सिनौली में 300-400 वर्ग मीटर के सीमित दायरे में 15 मार्च से 13 जून, 2018 तक उत्खनन किया। इस उत्खनन से प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों का बहुत ही विशिष्ट महत्त्व है, क्योंकि भारत में उत्खनन के अबतक के इतिहास में पहली बार दो पहिये वाले रथों के अवशेष मिले हैं, इन पर ताँबे से सज्जा की हुई है। रथ के पहियों पर भी ताँबे से इस प्रकार सज्जा की गई है जो सूर्य की किरणों की प्रतीक प्रतीत होती हैं। इसके साथ ही रथ का जुआ भी मिला है।

यहाँ पर 8 गड्ढ़े किए गए जिनमें तीन ताबूत, 2 अस्थि कलश व 8 कंकाल भी मिले हैं। लकड़ी से बने ये ताबूत ताँबे के चार पायों पर स्थित हैं। ताबूत के नीचे बिछी हुई दरी भी मिली है जो डिजाइनदार है। उत्खनन में शिरस्त्राण, तलवार, खंजर व सींग से बना कंघा मिला है जिस पर बैल बना हुआ है। यहाँ से पशुपतिनाथ की मुद्रा, ताँबे का दर्पण व ताँबे से बनी मशाल भी मिली है। इसके साथ ही 17 मृदभांड व चिड़िया का कंकाल भी मिला है। बर्तन, गेहूँ व उड़द के दाने मिले हैं। जो भी चीजें वहाँ मिली हैं इस बात को सिद्ध करती हैं कि ये लोग बहुत बहादुर व शाही परिवारों से संबंधित थे, जिन्हें सम्मानपूर्वक दफनाया गया।

यहाँ जो अवशेष मिले हैं वे भारतीय इतिहास के बारे में अब तक प्रचलित रूढ़ व भ्राँत धारणाओं को निर्मूल सिद्ध करने में सहायक होंगे। 300-400 वर्गमीटर के छोटे से दायरे में भारत में पहली बार जो अवशेष मिले हैं वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण है और ऐसा प्रतीत होता है कि ये हड़प्पा से पूर्व के हैं। इसलिए केंद्र सरकार से अनुरोध है कि वह इस क्षेत्र में कम से कम 200 एकड़ के विस्तृत क्षेत्र में उत्खनन कराए, जिससे भारतीय इतिहास को उसके वास्तविक स्वरूप में समझा जा सके ।

इस अवसर पर दिल्ली विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर व गांधी भवन के निदेशक डॉ. रमेश भारद्वाज जी ने कहा कि यह विचित्र स्थिति है कि आप हिंदुस्तान में हैं और अपनी अस्मिता को सिद्ध करने के लिए संघर्षरत हैं। अविभाजित भारत के पश्चिम में स्थित हड़प्पा में 1920-22 में रेलवे लाइन बिछाने के लिए की जा रही खुदाई में संयोग से एक समृद्ध बसावट के पुरातात्विक अवशेष प्राप्त हुए थे। इसीलिए उत्खनन से उजागर हुई सभ्यता को 'हड़प्पा सभ्यता' का नाम दिया गया, क्योंकि पहली खुदाई हड़प्पा में हुई थी इसलिए हम जब भी कोई नया उत्खनन करते हैं तो उसका नाम हड़प्पा रखते हैं।

देश का दुर्भाग्य है कि वामपंथी इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास के साथ बहुत छेड़छाड़ की है और इसके संबंध में बहुत-सी भ्राँत धारणाओं को जन्म दिया है। इसके विपरीत एस.पी. गुप्ता एक ऐसे

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 63



इतिहासकार थे जिन्होंने स्पष्ट किया कि भारत, ईरान व मध्य एशिया की सभ्यताओं में एक सातत्य और समरूपता है।

भारत के इतिहास लेखन में बी.बी. लाल का बहुत बड़ा योगदान है। पहली बार उन्होंने कहा कि भारत की सभ्यता सरस्वती नदी के तट पर विकसित हुई और इसे 'सरस्वती सिंधु सभ्यता' कहा। उन्होंने सरस्वती नदी के तटवर्ती क्षेत्रों मे उत्खनन के लिए प्रेरित किया जिसके परिणाम स्वरूप सरस्वती नदी के उद्गम स्थल यमुना नगर से गुजरात तक उत्खनन किया गया, जहाँ से भारतीय वैदिक संस्कृति एवं सभ्यता से संबंधित महत्त्वपूर्ण पुरातात्विक अवशेष प्राप्त हुए हैं।

मेहरगढ़ (अब पाकिस्तान में) से 7-9 हजार ईसा पूर्व तक के पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार राजस्थान और हरियाणा में हुए उत्खननों में हड़प्पा पूर्व व हड़प्पा के बाद के साक्ष्य मिले हैं। यह अवशेष 8000 ईसा पूर्व से लेकर 1400 ईसा पूर्व तक के हैं और ये सभी साक्ष्य भारत में विकसित हुई वैदिक संस्कृति से संबंधित हैं। इस संबंध में फरमाना व कलिबंगा से प्राप्त अवशेष बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। परंतु खेद की बात है कि ए.एस.आई और विदेशी व भारतीय इतिहासकारों ने इस बात का भरसक प्रयास किया कि उत्खनन में प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह वैदिक संस्कृति न सिद्ध हो। ए.एस.आई की मंशा का इसी बात से पता चलता है कि 1969 में हुई खुदाई की रिपोर्ट 48 वर्ष बाद 2017 में प्रकाशित की गई और उसमें वैदिक संस्कृति से सम्बद्ध साक्ष्यों का उल्लेख नहीं किया गया। सामान्यतः उत्खनन के संबंध में दुनिया भर में यह परंपरा है कि उत्खनन की रिपोर्ट उत्खनन के तीन-चार वर्ष के अंदर ही प्रकाशित कर दी जाती है।

1969 में कलिबंगा की खुदाई में यज्ञ-संस्कृति की प्रामाणिक पुरातात्त्वीय सामग्री प्राप्त होने के बाद 1970-1971 में विदेशी विद्वानों ने 'अग्नि' नामक विशालकाय ग्रंथ दो खंडों में प्रकाशित किया। प्रथम खंड में भारतीय यज्ञ परंपरा का विस्तार से वर्णन किया गया तथा खंड दो में याज्ञिक -कर्मकांड के पुरातत्त्वीय साक्ष्यों के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों के लेख हैं। प्रो. रोमिला थापर, परपोला जैसे विद्वानों ने यज्ञ संस्कृति को मूल भारतीयों की परंपरा बताया। जिसे बाद में बाहर से आए आर्यों ने उनसे ग्रहण किया। साथ ही संस्कृत को मूलनिवासियों की भाषा माना।

वैदिक साहित्य के कालक्रम के आधार पर वैदिक सभ्यता का इतिहास लगभग 12 हजार वर्ष का है। खेद की बात है कि जब पुरातात्विक साक्ष्यों से यह बात सिद्ध होती है कि संस्कृत का उद्भव और विकास भारत में ही हुआ है तो परपोला जैसे विद्वान इसका महत्त्व कम करने की दृष्टि से लिखते हैं कि– आर्य संस्कृत भाषा तो बोलते थे परंतु उन्होंने यह भाषा भारत के उन मूल निवासियों से सीखी जो संस्कृत बोलते थे।

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने स्पष्ट लिखा है कि भारत का इतिहास अभी लिखा ही नहीं गया है। इस नाम से जो दो-चार पुस्तकें हैं वह यूरोपवासियों द्वारा लिखी गई हैं। पश्चिम की दृष्टि से भारत के इतिहास को नहीं समझा जा सकता। भारत की इतिहास दृष्टि दर्शन पर आधारित है और दर्शन सार्वभौम होता है।

महात्मा गांधी के शब्दों में अपने देश की संस्कृति में इतिहास में मौलिक एकता की भावना बहुत महत्त्वपूर्ण है, परंतु वामपंथी इतिहासकार भारत की विविधता में एकता की भावना को देखना ही नहीं चाहते। आवश्यकता इस बात की है कि पिछले 70 वर्षों में हुए उत्खननों में मिले साक्ष्यों के आलोक में भारतीय इतिहास का पुनर्लेखन होना चाहिए।

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 64

संस्कृत साहित्य और भारतीय सांस्कृतिक चिंतन में सातत्य है और इसका क्रम कहीं नहीं टूटता। भारत में यह परंपरा रही है कि जो भी आचार्य कुछ नया लिखता और अपने मत का प्रतिपादन करता वह अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मत का उल्लेख करने के बाद ही अपनी बात कहता है जैसे-- आचार्य चाणक्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में अपने पूर्ववर्ती अर्थशास्त्रियों के मतों का उल्लेख कर अपना मत व्यक्त किया है।

इतिहास लेखन की दृष्टि से भारतीय पुरातत्व को समझने की आवश्यकता है। वास्तव में पुरातत्व एक मूक साक्ष्य है। पुरातत्व के अध्ययन में काल निर्धारण की दृष्टि से कार्बन डेटिंग का विशेष महत्त्व है इसलिए पुरातत्व अवशेषों के काल का सही-सही निर्धारण करने के लिए कार्बन डेटिंग की व्यवस्था उसी क्षेत्र में होनी चाहिए जहाँ से पुरातत्व साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। सिनोली से प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों का काल निर्धारण होने तक इनके संबंध में कोई भी धारणा नहीं बनानी चाहिए।

भारत में कालगणना की एक विशिष्ट परंपरा है जो खगोलीय घटनाओं पर आधारित है। इन खगोलीय घटनाओं के आधार पर कलियुग का प्रारंभ 27 फरवरी, 3102 ईसा पूर्व में हुआ। महर्षि वेद व्यास ने वेदों का संकलन महाभारत काल में किया। इस आधार पर ऋग्वेद का रचना काल 6000-8000 ईसा पूर्व है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय इतिहास लेखन की दृष्टि से पुरातात्विक साक्ष्यों के साथ ही खगोलीय साक्ष्यों और पुरातत्त्व से प्राप्त वैदिक साक्ष्यों का उपयोग किया जाए।

मंगल सृष्टि के अध्यक्ष डॉ. बजरंग लाल गुप्ता ने कहा कि सिनौली में उत्खनन के संबंध में श्री अमित राय जैन ने जो कार्य किया है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। भारतीय इतिहास लेखन के संबंध में पुरातत्व, शास्त्र व खगोल विज्ञान में मिलान किया जाना चाहिए। यदि कहीं कोई विरोधाभास है तो उसका उत्तर खोजना चाहिए। राम वन गमन के संदर्भ में जो वर्णन संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध है वहाँ उस समय की ग्रहों की स्थिति का वर्णन किया गया है। इस आधार पर राम के काल का निर्धारण सहज ही किया जा सकता है।

इतिहास का अपना एक दर्शन है, एक दृष्टि है। भारतीय इतिहास का अंतर्यामी सूत्र है 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'। आज एकता का यह सूत्र टूट गया है इसीलिए विवाद पैदा हो रहे हैं। हमें भारतीय इतिहास लेखन अपने देश के मानकों के आधार पर करना चाहिए। यदि हमारे मानक पश्चिमी हैं, तो हम भारतीय इतिहास लेखन के साथ न्याय नहीं कर पाएँगे।

पश्चिम के इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास के बारे में भ्रम पैदा करने की दृष्टि से इस धारणा को जन्म दिया कि आर्य बाहर से आए थे। इस संबंध में हमें सबसे पहले इस बात को स्पष्ट करना चाहिए कि 'आर्य' प्रजाति है या यह गुणवाचक संज्ञा है। जब यह निश्चित हो जाएगा की आर्य गुणवाचक संज्ञा है तो 'आर्य बाहर से आये थे' यह धारणा स्वतः निर्मूल हो जाएगी।

इस अवसर पर सर्वश्री मुन्ना लाल जैन, प्रो. नेम कुमार जैन, डॉ. निर्मल खंडेलवाल, आनंद आदीश, रवींद्र कुमार श्रीवास्तव आदि ने भी अपने विचार व्यक्त किए।

**स्नेहाकांक्षी**
**आदर्श गुप्ता**
**प्रबंध संपादक**

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 65



# सहयोगी वृंद

1. **एम 2 के फाउंडेशन**
ई-13/29, हर्ष भवन,
कनाट सर्कस, नई दिल्ली-1100 01

2. **श्रीमती संगीता सकलेचा**
बी-71, सेक्टर -2, नोएडा, उत्तर प्रदेश

3. **श्री भारत भूषण जैन**
सी-11, अहिंसा विहार, सेक्टर-9,
रोहिणी, दिल्ली-110085

4. चौधरी रणवीर सिंह यूनिवर्सिटी
जिंद, हरियाणा-126102

5. **श्री अमित खुराना**
110, जय अपार्टमेंट सेक्टर-9,
रोहिणी, दिल्ली-110085

6. **श्री ओम प्रकाश**
बी-4/399, सेक्टर-8,
रोहिणी, दिल्ली-110085

7. **श्री विजय मित्तल**
बी-6/46-47, तृतीय तल,
सेक्टर-3, रोहिणी, दिल्ली- 110085

8. **दीप्सी अरोड़ा**
1929, रानी बाग,
दिल्ली-110034

9. **श्री एच. एन. खुराना**
बी-3/86ए, केशव पुरम,
दिल्ली - 110035

10. **श्री अशोक जैन**
दुकान नं. 144, सेक्टर-14 मार्किट
गुरुग्राम -122001 (हरियाणा)

11. **सी.ए. दीनदयाल**
40, हनुमान लेन, प्रथम तल,
कनाट प्लेस, दिल्ली - 110 001

12. **श्री राजीव**
जी-2/129-130, सेक्टर-16,
रोहिणी, दिल्ली-110085

13. **श्रीमती आशा तंवर**
सी-2/11, गंगा त्रिवेणी अपार्टमेंट,
सेक्टर-9, रोहिणी,
दिल्ली-110085

MV_October_2018 final for Printing_26.09.2018:Layout 1 9/27/2018 4:01 PM Page 66

# मंगल विमर्श

## सदस्यता -प्रपत्र

**मंगल विमर्श** **त्रैमासिक पत्रिका**

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

सदस्यता -शुल्क

10 वर्षों के लिए
₹2000 मात्र

पत्रिका सदस्यता शुल्क हेतु
**मंगल सृष्टि** (Mangal Srushti)
के नाम चैक/ड्राफ्ट सी-84, अहिंसा विहार,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 पर भेजें।
फोन नं. +91-9811166215,
+91-11-27565018
+91-11-42633153

**मंगल विमर्श की..... वर्षों की सदस्यता हेतु.....**

**रुपये का ड्राफ्ट/चैक क्रं. ..... दिनांक.....**

**बैंक..... भेज रहे हैं,**

**कृपया..... वार्षिक सदस्य बनाने का कष्ट करें।**

**नाम.....**

**पता.....**

**.....**

**..... पिनकोड .....**

**फोन :..... मोबाइल:.....**

**इ-मेल.....**

**इ-मेल** mangalvimarsh@gmail.com **वेब साइट** www.mangalvimarsh.in